जैनधर्म की कहानियाँ

(भाग ११)

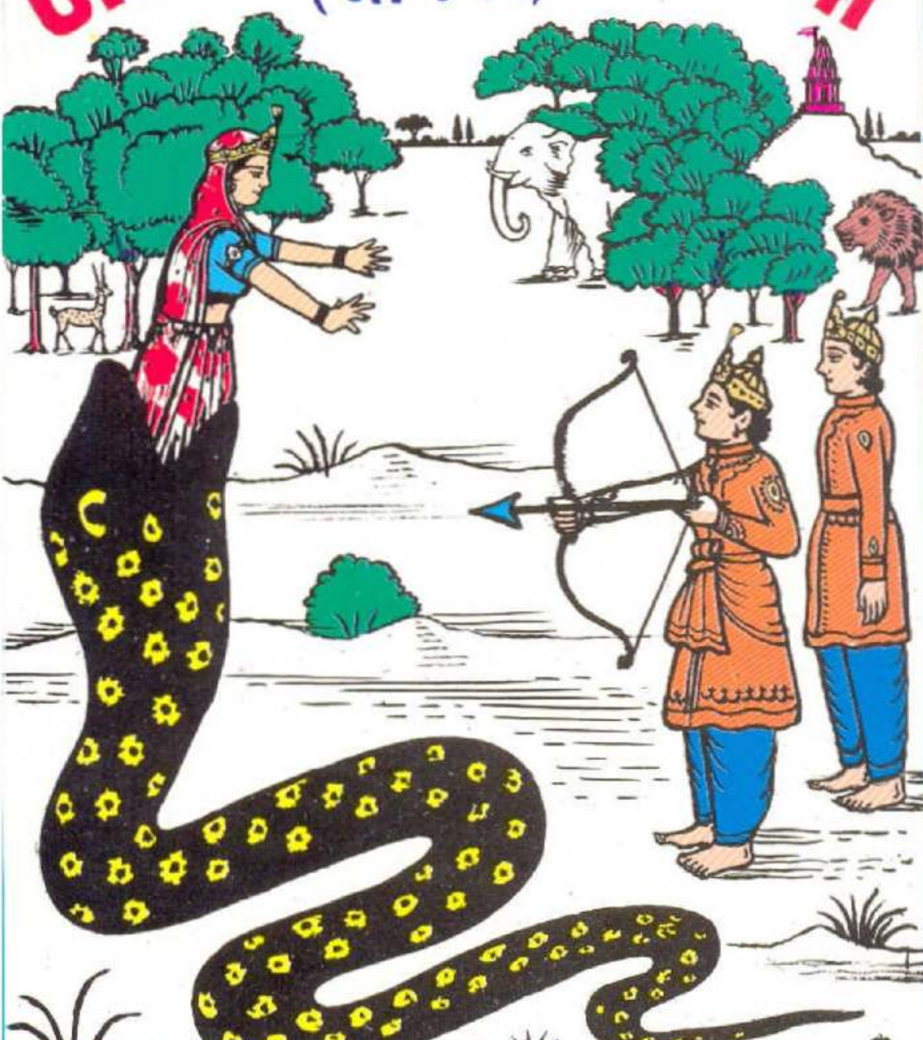

प्रकाशक

अखिल भा. जैन युवा फैडरेशन-खैरागढ

श्री कहान स्मृति प्रकाशन-सोनगढ

श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला का १७वाँ पुष्प

जैनधर्म की कहानियाँ

(भाग ११)

लेखक :

ब्र० हरिभाई, सौनगढ़

सम्पादक :

पण्डित रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर

प्रकाशक :

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन

महावीर चौक, खैरागढ़ - ४९१८८१ (मध्यप्रदेश)

और

श्री कहान स्मृति प्रकाशन

सन्त सान्निध्य, सोनगढ़ - ३६४२५० (सौराष्ट्र)

प्रथम आवृत्ति - ५,२०० प्रतियाँ
दिनांक - २५ दिसम्बर, १९९८

न्योछावर - **छह रुपये मात्र**

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्राप्ति स्थान -

- **अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, शाखा- खैरागढ़**
  श्री खेमराज प्रेमचंद जैन, 'कहान-निकेतन'
  खैरागढ़-४९१८८१, जि. राजनाँदगाँव (म.प्र.)

- **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट**
  ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२०१५ (राज.)

- **ब्र. ताराबेन मैनाबेन जैन**
  'कहान रश्मि', सोनगढ़-३६४२५०,
  जि. भावनगर (सौराष्ट्र)

टाईपसेटिंग एवं मुद्रण व्यवस्था -

जैन कम्प्यूटर,
श्री टोडरमल स्मारक भवन, मंगलधाम,
ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२०१५
फोन : ०१४१-७००७५१
फैक्स : ०१४१-५१९२६५

प्रकाशकीय

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी द्वारा प्रभावित आध्यात्मिक क्रान्ति को जन-जन तक पहुँचाने में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का योगदान अविस्मरणीय है, उन्हीं के मार्गदर्शन में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की स्थापना की गई है। फैडरेशन की खैरागढ़ शाखा का गठन २६ दिसम्बर, १९८० को पण्डित ज्ञानचन्दजी विदिशा के शुभ हस्ते किया गया था। तब से आज तक फैडरेशन के सभी उद्देश्यों की पूर्ति इस शाखा के माध्यम से अनवरत हो रही है।

इसके अन्तर्गत सामूहिक स्वाध्याय, पूजन, भक्ति आदि दैनिक कार्यक्रमों के साथ-साथ साहित्य प्रकाशन, साहित्य विक्रय, श्री वीतराग विद्यालय, ग्रन्थालय, कैसेट लायब्रेरी, साप्ताहिक गोष्ठी आदि गतिविधियाँ उल्लेखनीय हैं; साहित्य प्रकाशन के कार्य को गति एवं निरंतरता प्रदान करने के उद्देश्य से सन् १९८८ में **श्रीमती घुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला** की स्थापना की गई। साथ ही इसके आजीवन ग्रन्थमाला परम संरक्षक सदस्य ५००१/- में तथा संरक्षक सदस्य १००१/- में भी बनाये जाते हैं, जिनके नाम प्रत्येक प्रकाशन में दिये जाते हैं।

पूज्य गुरुदेव के अत्यन्त निकटस्थ अन्तेवासी एवं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन उनकी वाणी को आत्मसात करने एवं लिपिबद्ध करने में लगा दिया –ऐसे ब्र. हरिभाई का हृदय जब पूज्य गुरुदेवश्री का चिर-वियोग (वीर सं. २५०६ में) स्वीकार नहीं कर पा रहा था, ऐसे समय में उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री की मृत देह के समीप बैठे-बैठे संकल्प लिया कि जीवन की सम्पूर्ण शक्ति एवं सम्पत्ति का उपयोग गुरुदेवश्री के स्मरणार्थ ही खर्च करूँगा। तब **श्री कहान स्मृति प्रकाशन** का जन्म हुआ और एक के बाद एक गुजराती भाषा में सत्साहित्य का प्रकाशन होने लगा, लेकिन अब हिन्दी, गुजराती दोनों भाषा के प्रकाशनों में श्री कहान स्मृति प्रकाशन का सहयोग प्राप्त हो रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप नये-नये प्रकाशन आपके सामने हैं।

साहित्य प्रकाशन के अन्तर्गत जैनधर्म की कहानियाँ भाग १,२,३,४,५,६,७,८,९,१० लघु जिनवाणी संग्रह : अनुपम संकलन, चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी-गुजराती), पाहुड़ दोहा-भव्यामृत शतक-आत्मसाधना सूत्र, विराग सरिता तथा लघुतत्त्वस्फोट —इसप्रकार सोलह पुष्प प्रकाशित किये जा चुके हैं। अब यह सत्तरहवाँ पुष्प प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

जैनधर्म की कहानियाँ भाग ११ के रूप में पौराणिक कहानियाँ, नाटक एवं पहेलियाँ प्रकाशित की जा रही हैं। आशा है, जिन्हें पढ़कर पाठकगण अवश्य ही सन्मार्ग प्राप्त करेंगे।

जैन बाल साहित्य अधिक से अधिक संख्या में प्रकाशित हो। ऐसी भावी योजना में शान्तिनाथ पुराण, आदिनाथ पुराण, यशोधर चरित्र, बालि मुनिराज आदि प्रकाशित करने की योजना है।

इस कृति का सम्पादन कार्य पण्डित रमेशचंद शास्त्री, जयपुर द्वारा बड़े ही सुन्दर ढ़ग से किया गया है। अत: हम उनके आभारी हैं।

साहित्य प्रकाशन फण्ड, आजीवन ग्रन्थमाला परम संरक्षक एवं संरक्षक सदस्यों के रूप में जिन दातार महानुभावों का सहयोग मिला है, हम उन सबका भी हार्दिक आभार प्रगट करते हैं, आशा करते हैं कि भविष्य में भी सभी इसी प्रकार सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

विनीत:

मोतीलाल जैन	*प्रेमचन्द जैन*
अध्यक्ष	साहित्य प्रकाशन प्रमुख

आवश्यक सूचना

पुस्तक प्राप्ति अथवा सहयोग हेतु राशि ड्राफ्ट द्वारा **" अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, खैरागढ़"** ***के नाम से भेजें। हमारा बैंक खाता स्टेट बैंक आफ इण्डिया की खैरागढ़ शाखा में है।***

विशेष– श्री सूरज बैन अमुलख भाई सेठ स्मृति ट्रस्ट, मुम्बई ह० सौ० कनक बैन अनन्तराय सेठ मुम्बईकी ओर से पुस्तक की कीमत लागत मूल्य से कम में विक्रय हेतु १० प्रतिशत राशि प्रदान की गई है।

–आभार

अनुक्रमणिका

क्रं. नाम	पेज नं.
१. वैराग्य और पुरुषार्थ प्रेरक कथा	१३-१७
२. रानी चेलना का धर्मप्रेम	१७
३. वैराग्य और वैराग्य का भ्रम	१८-२६
३. वीर का मार्ग	२७-३१
४. आर्यिका माताजी के साथ में	३२-३९
४. स्वास-स्वास में सुमिरन करले	३९
५. बाहिर नारककृत दु:ख भोगे, अंदर सुख गटागटी	४०-४१
९. चिन्मूरत दृगधारी की	४१
६. निर्विवाद तथ्य बना विवाद का विषय	४२-६९
७. ज्ञानबर्द्धक पहेलियाँ/प्रश्न	७०-८०

बन जाना भगवान

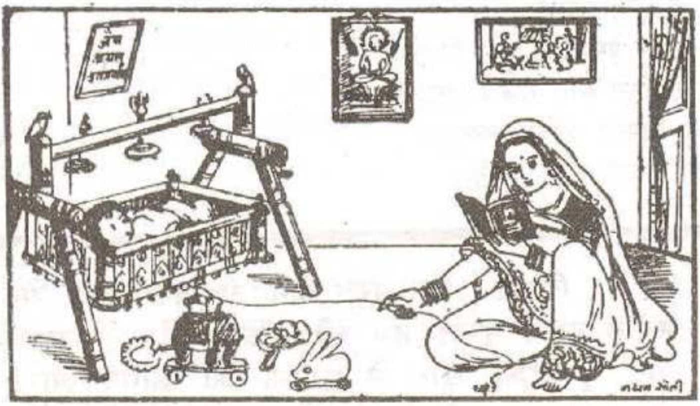

पलना के ललना सुनो ! हंस के माँ के बैन।
शुद्ध निरंजन बुद्ध तुम, क्यों राते बेचैन।।
तुम हो वारिस वीर के श्री जिनवर के नन्द।
अन्तर आतम साधना होगा परमानन्द।।
मात झुलाती बाल को देती है आशीष।
चल कर वीर के पंथ पर बन जाना जगदीश।।
सुन लो बच्चो प्रेम से जिनवाणी का सार।
स्वानभूति से पावना भव सागर का पार।।
परमेष्ठी प्रसाद से तुम करना आतमज्ञान।
मोह छोड़ संसार का बन जाना भगवान।।

वैराग्य और पुरुषार्थ प्रेरक कथा

(पद्मपुराण में समागत)

(अजगर सर्प के मुख में अपनी पुत्री की मृत्यु देखकर २२ हजार पुत्रों सहित चक्रवर्ती राजा चक्रधर को वैराग्य)

महाविदेह क्षेत्र में स्वर्ग समान पुंडरिक देश में त्रिभुवनानन्द नगर में राजा चक्रधर चक्रवर्ती राज करते थे। चक्रवर्ती की एक अनंगशरा नाम की पुत्री थी, जिसके गुण ही उसके आभूषण थे। उसके समान सुन्दर अदभुत रूपवान कोई दूसरी स्त्री नहीं थी।

प्रतिष्ठितपुर का राजा पुर्नवसु विद्याधर चक्रवर्ती की इस कन्या को देखकर उस पर मोहित हो गया और उसका अपहरण कर उसे विमान में बिठाकर ले गया। चक्रवर्ती ने क्रोध में आकर उसके साथ युद्ध शुरु कर दिया। उसका विमान तोड़ डाला, जिससे पुनर्वसु ने व्याकुल होकर कन्या को आकाश से नीचे फैंक दिया।

शरद ऋतु के चन्द्रमा की ज्योति समान पुनर्वसु की पर्णलघु विद्या से कन्या एक भयानक जंगल में आ गिरी। उस भयानक जंगल में अनेकों दुष्ट वनचर जीव रहते थे। उस जंगल में विद्याधरों का भी प्रवेश नहीं था। जहाँ सूर्य की एक किरण भी प्रवेश न कर सके।—ऐसे महा-अंधकारपूर्ण नाना प्रकार की बेलों से घिरे हुए; ऊँचे-ऊँचे वृक्षों से भरे हुए; चीता, बाघ, सिंह, गेंडा, रीछ इत्यादि अनेकों वनचरों से युक्त; ऊंची-नीची भूमि में गहरे-गहरे गड्ढ़ों से युक्त उस महा-भयंकर वंन में वह कन्या अत्यन्त दुखी होती हुई चारों दिशाओं में अपने माता-पिता को ढूढती हुई उन्हें याद कर-करके विलाप करती/रोती है।

हाय मैं इन्द्र समान शक्ति और वैभव से सम्पन्न चक्रवर्ती की पुत्री होकर भी कर्मोदय वशात ऐसी अवस्था में आ पड़ी। अब मैं क्या करूँ? इस जंगल का तो कोई आदि-अन्त भी दिखाई नहीं देता। इस वन को देखकर मुझे बहुत डर लगता है। मैं इस वन में असहाय पड़ी

हूँ, यहाँ से मेरे को कौन बचायेगा? हे पिता! आप महापराक्रमी हो, मेरी रक्षा करो; हे माता! आपने मुझे कल्पनातीत दु:खों को सहन करके अपने गर्भ में धारण किया, जन्म दिया, क्या इसलिये आप मेरी रक्षा नहीं करती। हे भाई! आप मुझे एक क्षण मात्र भी अकेला नहीं छोड़ते थे, अब इस भनायक जंगल में अकेले क्यों छोड़ दिया है। अब किस कारण से इतना भयानक दुख मेरे ऊपर आ पड़ा है कि जहाँ चाहने पर भी मौत नहीं आती। अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ?

इसप्रकार बहुत समय तक विलाप करते हुए वह दुखी होती रही। उसके विलाप को देखकर अत्यन्त दुष्ट पशु भी करुणा से भर गये। वह कन्या भूख से परेशान होकर शोक-सागर में डूबी फल-फूलों से अपना पेट भरने लगी। कर्मयोग से कई शीतकाल के दुख सहने पड़े। कैसा है शीतकाल? जो कमल के वन की शोभा को नष्ट करने वाला है। अनेक ग्रीष्म ऋतुओं का ताप सहन करना पड़ा। ग्रीष्म का इतना भयंकर आताप कि जिससे जल के समूह सूख गये। तथा दावानल से अनेकों वृक्ष जलकर राख हो गये तथा अनेक जीव-जन्तु जलकर मर गये। वर्षाकाल की भयंकर वर्षा के अधंकार से सूर्य की ज्योति दब गयी। सूर्य की ज्योति को दबाने वाली भयंकर वर्षा से उस कन्या

का मलिन शरीर भी चित्राम की भाँति कान्तिरहित, दुर्बल, बिखरे हुए केश, लावण्यरहित ऐसा हो गया कि जैसे सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा का प्रकाश क्षीण हो जाता है। फलों से नम्रीभूत वृक्षों के नीचे बैठे-बैठे वह पुत्री अपने पिता को याद करती हुई रोती रहती है। विचारती है कि मेरा जन्म चक्रवर्ती के घर में हुआ; परन्तु पूर्व जन्मकृत पाप के उदय से मैं ऐसी भयंकर दुख अवस्था में आ पड़ी। उन दुखों को याद कर-करके ऐसे रोती मानों आंसुओं की धार से बरसात का पानी ही बरस रहा हो।

इसप्रकार वन में रहते हुए वृक्षों से जो फल नीचे गिरते, उनका भक्षण करती। बेला-तेला, उपवास करने से शरीर भी सूख गया, कमजोर हो गया, फिर भी मात्र एक समय जल-फल खाकर पारणा करती है।

पुष्पों की सेज पर सोने वाली चक्रवर्ती की पुत्री जिसे अपने स्वयं के केश भी चुभते थे, वह आज विषम भूमि पर दुखी होकर सोती है। जो अपने पिता तथा परिजनों के साथ आनन्दमयी बातें करती थी, उनकी मधुरवाणी सुनकर प्रसन्न हुआ करती थी, आज वही भयंकर वन में सिंह, सियार आदि भयंकर जानवरों की भयानक और करकस आवाजों को सुनकर भयानक रात्रि व्यतीत करती है। इसप्रकार अनेक दुखों के बीच रहकर उस बालिका ने तीन हजार वर्ष तक उस भयानक जंगल में अनशनादि तप किये। सूखे फल-फूलों को खाकर तथा झरनों का प्रासुक जल पीकर अपना जीवन-यापन किया। एक सौ हाथ भूमि से आगे नहीं जाने की प्रतिज्ञा लेकर दिगव्रत-देशव्रत आदि का पालन किया और क्रमशः महावैराग्य को प्रकट कर सम्पूर्ण खान-पान का त्याग कर सल्लेखना (समाधिमरण) की तैयारी कर ली।

एक दिन उसी जंगल मार्ग से एक अरहदास नामक विद्याधर सुमेरुपर्वत की वंदना करके वापस जा रहा था कि उसे वह चक्रवर्ती की पुत्री उस भयानक जंगल में दिखाई दी, तब उसने उस पुत्री को यह कहते हुए कि "आप हमारे साथ चलो हम तुम्हें तुम्हारे पिता

चक्रवर्ती महाराज चक्रधर के पास पहुंचा देते हैं'' चलने का अनुरोध किया; परन्तु एक सौ हाथ के बाहर नहीं जाने की प्रतिज्ञा बताते हुए उस कन्या ने उनके इस अनुरोध को स्वीकार नहीं किया। तब उस विद्याधर ने शीघ्र ही चक्रवर्ती महाराज चक्रधर के पास जाकर उनको उनकी पुत्री के समाचार सुनाये और सुनते ही चक्रवर्ती अपने २२ हजार पुत्रों सहित वहाँ आ पहुंचे।

चक्रवर्ती चक्रधर वहाँ पहुँचकर क्या देखते हैं कि उसकी पुत्री को एक अजगर सर्प खा रहा है, पुत्री अजगर सर्प के मुख में पड़ी है और शांतभाव से समाधिमरण के लिए तैयार है। पुत्री ने अपने पिता से अजगर को अभयदान दिलाया और स्वयं समाधिमरण पूर्वक देह त्याग कर तीसरे स्वर्ग में गई।

इसप्रकार पुत्री द्वारा पुरुषार्थ पूर्वक देह छोड़कर देखकर चक्रवर्ती अपने २२ हजार पुत्रों के साथ वैराग्य को प्राप्त हुए और उन्होंने वीतरागी दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली।

यहाँ जिस पुर्नवसु विद्याधर ने अनंगसरा का अपहरण किया था, वह उसे खोजते-खोजते अत्यन्त दुखी हुआ और पश्चाताप करते

हुए संसार से विरक्त होकर द्रुमसैन मुनिराज के पास मुनिदीक्षा धारण कर महातप करते हुए अन्त में समाधिपूर्वक मरण कर स्वर्ग में देव हुआ और वहाँ से चय कर राजा दशरथ का पुत्र लक्ष्मण हुआ और अनंगशरा भी स्वर्ग से चय कर द्रोणमेघ की पुत्री विशल्या हुई। तथा पुर्नवसु ने अनंगशरा को प्राप्त करने का निदानबंध किया था, अतः लक्ष्मण की विशल्या से शादी हुई।

जैन शासन की श्रद्धा-भक्ति से भविष्य में दोनों ही जीव मोक्ष प्राप्त करेंगे।

रानी चेलना का धर्मप्रेम

भगवान महावीर के समय में महाराजा श्रेणिक का विवाह चेटक राजा की सुपुत्री चेलना के साथ हुआ। रानी चेलना त्रिशला माता की सगी बहिन तथा महावीर की मौसी थी।

मगधदेश की महारानी चेलना को वहाँ तनिक भी चैन नहीं मिलता था, क्योंकि श्रेणिक राजा तो दूसरे धर्म को मानता था तथा जैनधर्म के ऊपर उसकी किंचित् भी श्रद्धा न थी। जैनधर्म के संस्कारों के बीच पली हुई इस चेलना को जैनधर्म के बिना राज्य में चैन कहाँ से मिले? वह राजा को कहती है कि हे राजन्! जैनधर्म रहित इस राज्य को धिक्कार है। राजा उन्हें जैनधर्म के पालन करने की और जिनमंदिर बनवाने आदि की अनुमति प्रदान करता है। पश्चात् चेलना रानी परमजिन-भक्ति पूर्वक महान जिनालय बनवाती है, आनन्द से पूजन-भक्ति करती है....और धीरे-धीरे राजा का हृदय परिवर्तन भी कर देती है।

राजा भी अन्त में जैनधर्म का दृढ़ श्रद्धालु बन जाता है और जब राजगृही में विपुलाचल पर्वत पर भगवान महावीर का समवशरण आता है, तब भगवान के पादमूल में क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त कर तीर्थंकर नामकर्म का बंध बांधता है और जैनधर्म के जय जयकार से भारत गूंज उठता है—

वैराग्य और वैराग्य का भ्रम

(शुभचन्द्राचार्य तथा भर्तहरि का एक प्रसंग)

यहाँ ''ज्ञानार्णव'' नामक महान ज्ञान-वैराग्य दर्शक ग्रन्थ के प्रणेता के बारे में कथा है। जो परम वीर थे, जिनको चैतन्यस्वरूप में विश्रान्ति द्वारा मुनिपद सुखरूप था, कायर को मिथ्या प्रतिभास वश जैन मुनि का पद कठिन दु:खदाता भासित होता है; किन्तु अक्षय-अनन्त सुखस्वरूप मोक्ष एवं मोक्षमार्ग कभी भी दु:खरूप एवं दु:खदाता नहीं हो सकता ।

वैराग्य कई प्रकार के होते हैं—

१. राग-गर्भित, २. द्वेष-गर्भित, ३. मोह—दु:ख-गर्भित और ४. नित्यभूतार्थ ज्ञायक स्वभावाश्रित ज्ञान-गर्भित।

ज्ञान-गर्भित वैराग्य को हमारा नित्य नमस्कार हो।

अब यहाँ ऐसे ही ज्ञान-गर्भित वैराग्य सम्पन्न महा-मुनिराज शुभचन्द्राचार्य की संक्षिप्त कथा का वर्णन करते हैं।

शुभचन्द्र बड़े भाई थे और भर्तृहरि छोटे भाई।

उनके पिता को अपनी नव-परणीता पत्नि तथा उसका पुत्र अत्यधिक प्रिय था, किन्तु वह पुत्र इतना शूरवीर नहीं था, फिर भी उनकी इच्छा उसी पुत्र को राज्य देकर रानी को सन्तुष्ट करने की थी। इस कारण वे निरन्तर इस चिन्ता में रहते थे कि ये दोनों पुत्र परम पराक्रमशाली, तेजस्वी, शूरवीर हैं, अत: इनके होते हुए उस तीसरे पुत्र को राज्य कैसे दिया जा सकता है?

एक दिन ऐसा प्रसंग बना कि राजपुत्र शुभचन्द्र तथा भर्तृहरि खेल रहे थे, मंडप में लगे लोहे के स्तम्भ को उन्होंने गन्ने के समान मोड़ दिया। यह अतिशय शरीर बल धारी पुत्रों को देखकर राजा को भय लगा कि ये दोनों पुत्रों का अस्तित्व भविष्य में मेरी इच्छापूर्ति में

बाधक हो सकता है। अत: उस राजा ने मंत्री को आज्ञा दी कि इन दोनों बड़े राज पुत्रों को जगंल में ले जा कर मार डालो। मंत्री ने राजा को बहुत समझाया, परन्तु राजा ने मंत्री की कोई बात नहीं मानी और कहा कि राज्य की नीति में ऐसा होता है। मंत्री इस अनुचित बात को मन में धिक्कारते हुए बड़े दु:खी होकर राजपुत्रों को संसार की विषमता समझाते हैं कि भैया! आप तो बड़े समझदार एवं शूरवीर हैं, किन्तु धिक्कार है इस मोह को, जो आपके पिता आपकी महानता-शूरवीरता को देखकर स्वार्थी हो जल रहे हैं, अत: उन्होंने आपकी हत्या करने की मुझे आज्ञा दी है; किन्तु मेरे द्वारा ऐसा नहीं होगा, अत: आप शीघ्र कहीं दूर चले जाओ और गुप्त भेष में ही रहना।

संसार की विषमता का अनुभव करते ही दोनों भाईयों को वैराग्य हो गया, दोनों भाई अपनी-अपनी रुचि के अनुसार सुख की शोध में अलग-अलग निकल पड़े।

भर्तृहरि को उस आत्मिक सुख और उनके साधन की श्रद्धा भी नहीं थी, अत: वह देह और पांच इन्द्रियों के विषयों में सुख मानने के भ्रम में था। ''जैन साधु परमेष्ठी पद में तो दु:खी होते हैं'' ऐसे

मिथ्या प्रतिभासवश वह कुलिंगी, जो अज्ञानी पंचाग्नि तप द्वारा हिंसा

में हिंसा न मानकर धर्म माननेवाले थे, उनकी संगति पाकर, उनका अनुयायी बनकर वहाँ सुख-सुविधा प्राप्ति की इच्छा से उनका भक्त बन गया।

तथा शुभचन्द्र को तो लोकोत्तर और पवित्र संयमित जीवन ही प्रिय था, किसी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को इष्ट-अनिष्ट मानना या किसी से भय या आशा रखना उन्हें जरा भी सम्मत नहीं था, वे तो निरन्तर-नित्य निरञ्जन ज्ञानमय निजरूप के आदर/आश्चर्य/चिन्तन सहित सोचते जा रहे थे। वे अपने त्रैकालिक तत्त्व को ही दृष्टिपथ रखकर संसार की विषमता, अस्थिरता जानकर संसार से उदास और मोक्षस्वरूप सच्चे सुख के अभिलाषी एकत्व-विभक्त निज-आत्मा को ही मंगल, उत्तम और शरणभूत मानते थे।

अन्तरंग-बहिरंग परिग्रह से रहित जैन मुनियों में तो भेदविज्ञान की प्रवीणता से प्राप्त नित्य ज्ञानानन्दमयी अन्तरंग में प्रगट अतिसूक्ष्म चैतन्य-स्वभाव के अवलम्बन से जितेन्द्रियता और अतीन्द्रिय आत्मिक सुख ही होता है, जिसे शास्त्रीय भाषा में शुद्धोपयोगरूप—साधकदशारूप मुनिधर्म कहते हैं।

''स्वयंभू अपनी आत्मा'' —इसप्रकार सच्चे सुख के शोधक

शुभचन्द्र की निजशक्ति के बल से इतनी तैयारी हो चुकी थी कि जो यथाजातरूपधर जिन मुद्राधारी निस्पृह जिन-मुनि को पा लिया। एकाकी आत्मरूप में मग्न दिगम्बर जैनमुनि को देखा तो हृदय गद्गद् आनन्द विभोर हो गया। जैसे तृषातुर को पवित्र जल की प्राप्ति, मोती बनने योग्य सीप को स्वाति नक्षत्र में जलवर्षा मिल गई हो, उसी प्रकार शुभचन्द्र को एक निर्जंतु स्थान पर ध्यानमुद्रा में स्थित वासना-विजयी, तत्त्वज्ञानी और विवेकमूर्ति जैन साधु मिल गये। जिन का नाम था वन्दनीय श्रुतसागर।

शुभचन्द्र की आध्यात्मिकता को एक मौका मिल गया, उन्होंने एक विवेकी बुद्धिमान की तरह गुरु-उपासना द्वारा आत्मार्थी बनकर निज आत्महित का भरपूर लाभ उठाया।

शुभचन्द्र ने श्रीगुरु के समीप श्रद्धा, ज्ञान और आचरण का बल विशेष प्रगट करने के लिये प्राथना की, भगवन्। मुझे सब विषमताओं को नष्ट करने वाली निर्ग्रन्थ मुनिदीक्षा देने का अनुग्रह कीजिये........फिर थोड़े ही समय में शुभचन्द्र राजपुत्र न रहकर, परमशांत, वैराग्य-मंडित, निर्लिप्त, निर्ग्रन्थ साधु परमेष्ठी की श्रेणी में जा बैठे।

''विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रह:।
ज्ञान-ध्यान-तपोरक्त: तपस्वी स: प्रशस्यते।।''

बस, अब अखंड ज्ञान-चेतना के स्वामित्व उपरान्त स्वरूप में विश्रान्ति रूप विशेष स्वरूपाचरण चारित्र के धारक हमारे आराध्य योगिराज शुभचन्द्र अखण्ड प्रतापवंत ज्ञान-वैराग्यमय उज्ज्वल आराधना में लवलीन रहते, उन्हें कितनी ही ऋद्धि-सिद्धियाँ प्राप्त हो गईं; परन्तु उन्होंने उन ऋद्धियों का कभी उपयोग नहीं किया।

रिद्धि-सिद्धियाँ दासी हो रहीं
ब्रह्मानन्द हृदय न समाय, जीवन धन्य उन्हीं का।
प्रतिबन्ध रहित मुनिराज हैं,
नहिं कायर का काम, जीवन धन्य उन्हीं का।।

इसप्रकार शुभचन्द्रजी तो अब स्वरूप सम्पदा से सम्पन्न ऋद्धिधारक दिगम्बर जैन मुनि थे।

और भर्तृहरि जिसको अनित्य मोह-गर्भित वैराग्य था। वह दुनियाँ के अरुचिकर-संघर्षमय विषयों में इष्ट-अनिष्ट प्रतिभास और विषादमय घटनाओं के बारे में सोचता-विचारता बहुत जगह घूमा। खान-पान, थकान, स्नान, आराम, विश्राम को याद करने लगा, देह के प्रति ममता विशेषरूप से जाग उठी, क्षुधा आदि के प्रश्न हल करने में व्यथित हो उठा, कन्दमूल-फल जो हाथ लगे उनका भक्षण करने लगा, अनछना पानी जो जल-जंतु से परिपूर्ण होता है पीने लगा, फिर भी तृष्णा जयों की त्यों बनी रही।

एक दिन सघन वन में घूमते हुए भर्तृहरि ने मस्तक पर बड़ी-बड़ी जटाओं को धारण करने वाले तपस्वी को देखा, जो चारों ओर आग जलाकर बीच में बैठा हुआ पंचाग्नि-तप तप रहा था। भर्तृहरि ने उसे नमस्कार करके आश्रय देने की प्रार्थना की, तापसी ने भी राजकुमार है ऐसा जानकर प्रसन्नता पूर्वक उसे स्वीकार किया।

कई वर्षों के पश्चात् भर्तृहरि यंत्र-मंत्रादि वनस्पति रसायन विद्या का जानकार होकर गुरु से पृथक् हो गया और सुवर्ण बनाने की रसकुप्पी तैयार की, जनरंजन के लिये भक्त समाज जुट गया।

एक दिन अपने भ्राता श्री शुभचन्द्र की याद आंई तो अपने शिष्यों को उनकी खोज में भेज दिया, बहुत खोज के पश्चात समाचार आया कि भैया तो नग्न दिगम्बर ही हैं। घोर दरिद्रता दिख रही है, वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं है, भोजन के भी कोई साधन नहीं हैं, भक्तगण भी उनकी व्यवस्था में नहीं हैं। बड़े कष्ट में हैं शिष्य ने आकर इत्यादि प्रकार से भर्तहरि को बताया और कहा कि मैं उनकी यह दशा प्रत्यक्ष देखकर आया हूँ।

देखो! संयोग में, निमित्त में एकत्वबुद्धि से जीव देह और आत्मा को एक मान रहे हैं, उसे निर्ग्रन्थ वीतरागता क्या होती है, इसका

जरा भी पता नहीं होता। जैन मुनि अशरण, अनाथ, दुःखी कभी नहीं होते हैं; इच्छा ही दुःख है, दुःख का अभाव ही सुख है, मुनिराज को तो अपने अन्तरंग में प्रगट अतिसूक्ष्म चैतन्यस्वभाव में एकाग्रता के बल से परम अतीन्द्रिय सुख है, जो अन्तर्दृष्टि ग्राह्य है, अज्ञानी ऐसा न मानकर अपनी देह में आत्मबुद्धि द्वारा बाह्य वस्तु के संयोग-वियोग में इष्ट-अनिष्ट मानकर अपने को सुखी मानता है, अतः वह मिथ्या प्रतिभास ही संसार है, दुःख है।

जब भर्तहरि ने अपने शिष्य के द्वारा ऐसा समाचार सुना कि शुभचन्द्र बहुत दुःखद-दशा में है, तब भर्तृहरि ने उनका दुःख दारिद्र मिटाने के लिये अपनी आधी स्वर्णरस-तुम्बी उनके पास भेज दी और कहा कि भैया को दे आना, समझाना कि यह दुर्लभ वस्तु है, स्पर्श मात्र से तांबा सोना बन जाता है। आपकी दरिद्रता को देखकर सुखी करने की लिये आपके लघु बन्धु ने यह कठिन साध्य वस्तु आपके लिये भेजी है, इसका उपयोग करके सुख सुविधा में रहें.......!

देखो, यह जीव संयोग में एकताबुद्धि से सुख-दुःख मानता है, मनवाना चाहता है, सब को अपनी देहाश्रित ममता दृष्टि से देखता रहता है, वह मिथ्या प्रतिभास ही सबसे बड़ा पाप है; दुःख है, संसार है।

जो निरन्तर आत्मिक सुख में तृप्त हैं, सुखी ही हैं, —ऐसे शुभचन्द्राचार्य के पास पहुंचकर शिष्य ने वह रस-तुम्बी उनके सामने रखकर भर्तृहरि के बताये अनुसार निवेदन किया, उन्होंने उसे उपेक्षाबुद्धि से देखा और जबाब दिया कि इसे पत्थर पर पटको........शिष्य दुविधा में पड़ गया, अरे.....कितनी वनस्पति-धातुओं का कष्टसाध्य रस पत्थर पर कैसे पटका जाय? शुभचन्द्र ने फिर कहा— त्याग की हुई वस्तु के प्रति इतना ममत्व क्या? पटक दो.....दुःख के साथ आज्ञा का पालन किया और लौटकर भर्तृहरि को यह सब हाल सुनाया कि बड़े भाई ने ऐसा कहा, उनकी आज्ञानुसार वह सिद्ध किया गया रसायन मैंने पत्थर पर फैंक दिया।

भर्तहरि को जिनता मोह अपने शरीर के प्रति था, उतना ही मोह सुवर्णसिद्धि रस के ऊपर था, समाचार सुनकर सन्न हो गया, हृदय में बहुत बड़ा आघातरूप वेदना का अनुभव करने लगा, रात भर चिन्तित रहा, हाय मैंने गलती की, कहीं इतनी बहुमूल्य वस्तु यों भेजी जाती है? अब मैं स्वयं ही जाकर उन्हें समझाऊंगा, पुन: ऐसी भूल नहीं होने दूंगा, इत्यादि संकल्प-विकल्प रूप आर्तध्यान करता रहा और सोचता रहा कि हो सकता है शिष्य ने मेरे भैया को इस दुर्लभ रसायन रस की ठीक-ठीक महत्ता ही न बताई हो। इसप्रकार अनेक चिंताओं में चिन्तित हो बिस्तर पर पड़ा रहा, रातभर सो नहीं पाया।

सुबह उठा, और अपनी इच्छापूर्ति हेतु जो आधी रसकुप्पी स्वयं के लिये बचा कर रखी थी, उसे लेकर चल पड़ा भैया को देखने के लिये।

संयोगदृष्टि तो थी ही, दूर से देखा, चमड़े को, कि ओह... भैया का शरीर कृश है, एकाकी असहाय हैं, अनाथ हैं । ''तपोबल से उद्दीप्त शांत सौम्यमुद्रा से दृढ़ पद्मासन पर आसीन हैं'' ऐसे उनके अन्तरंग स्वरूप ज्ञानानन्दमय तत्त्व को न पहिचानकर चर्मचक्षु द्वारा बाह्य देह को ही देखा– ''कि अहो! यही मेरा बड़ा भैया है'' और वह गद्गद् हो उठा, चरणों में गिरकर अभिवादन किया–''सप्रेम वंदना..''

सच्चे योगिराज शुभचन्द्र तो उत्तम क्षमा, संतोष, अकिंचन भावना से अलंकृत थे, सहज अपनी आत्मलक्ष्मी से सदा तृप्त ही थे। कोई खड़ा है, नजर उठाकर देखा तो भर्तृहरि,....गेरूआ वस्त्र, माला, जटा आदि से मण्डित, मृगचर्म सहित परिग्रहधारी छोटा भैया था...धर्मवृद्धि दी।

भर्तहरि बोला– ''भैया! जैसे ही सुना कि तुम अनाथ हो, संकट में हो, आधी तूंबी कंचन रस भेज दिया था, लेकिन व्यर्थ गया। अब शेष आधी तूंबी भी लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।''

''हाँ भैया ! सोना बनाया जाता है इससे, बड़ी बेशकीमती चीज है यह ।

'सोना; शुभचन्द्र ने पूछा और तूंबी उठाकर पत्थर पर पटक दी। यह देख भर्तहरि सन्न रह गया।

शुभचन्द्र बोले– कहाँ हुआ सोना?

रुँधे हुए गले से कहा– भैया! पत्थर नहीं, तांबा सोना बनता है। तुमने यह क्या किया....? उफ ! बारह वर्ष गुरु की सेवा करने पर इसे पा सका था मैं। ओह! यह अतिदुर्लभ वस्तु न तुम्हारे काम आई, न मेरी रही।

शुभचन्द्र मुस्कराये– भर्तृहरि की सरलता और भोलेपन पर, फिर बोले– भर्तृहरि तुम घर छोड़कर विराग के लिये यहाँ आये थे; धन, दौलत, मान-सन्मान और राज्यलक्ष्मी को ठुकराकर। मैं देख रहा हूँ सोने के लोभ को यहाँ आकर भी तुम नहीं छोड़ सके हो, आज भी तुम में कलंक बाकी है। इतने वर्ष बिताकर भी मिथ्या प्रतिभास – अज्ञानता के वश में रहे, इसे विराग नहीं, दम्भ कहते हैं। भोले प्राणी धर्म के नाम पर अनंत भव में एसे कई ढ़ोंग कर चुके....

पवित्र होने का उपाय अपूर्व है.... जैसे सूर्य सदा प्रकाशमय ही है, वह कभी भी अन्धकार का ग्रहण या त्याग कर सकता है? नहीं। उसी प्रकार यह आत्मा चाहे अशुद्ध रूप परिणमे या शुद्धरूप, किन्तु परद्रव्य को किसी भी प्रकार ग्रहण या त्याग नहीं कर सकता। हाँ रागी जीव उनकी भूमिका के अनुसार ये करना, ये न करना, —ऐसा रागभाव अवश्य करता रहता है। परन्तु यदि वह चाहे तो अपने त्रैकालिक निर्मल पूर्ण विज्ञानघन स्वतत्त्व के अबलम्बन के बल द्वारा भेदविज्ञान की प्रवीणता रूप स्वसन्मुख ज्ञाता बनकर अपूर्व धैर्य को धारण कर सकता है।

स्वाधीनता को छोड़ना, पराधीनता मोल लेना कहाँ तक ठीक है? प्रथम तो सबसे बड़ा पाप मिथ्यात्व है। तथा सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वार्थों को और निजरूप को विपरीतता रहित और भावभासन सहित जानना ही तत्त्वविचार के उद्यमरूप प्रथम नम्बर का धर्म है। वीतरागता रूप चारित्र धर्म ऊंचे नम्बर का धर्म है, जो सम्यग्दर्शन के पश्चात् ही हो सकता है। कुछ समझे भैया!

भर्तहरि टकटकी लगाकर सुन रहा था, उसे अपने भीतर कुछ उजाला-सा होता मालूम दिया; किन्तु मन में दुविधा का दु:ख दूर नहीं हुआ था। शुभचन्द्र बोले— भर्तृहरि, यदि आपको सुवर्ण की ही चाह है? तो लो कितना सोना चाहते हो? विशाल पत्थर पर अपनी चरण रज छोड़ दी, आश्चर्य.... ! तपोबल की पवित्रता और पुण्य की अचिन्त्य शक्ति, वह सारा पत्थर सोना बन गया। भर्तृहरि आंखें फाड़े देखता भर रह गया, अचम्भित-सा।

हृदय भर आया उसका, भैया की सम्यक् रत्नत्रयरूप तपस्या ने मोह लिया। पैरों में गिरकर बोला—'मुझ डूबते को उबारिए महाराज! मैं अपने को आपके चरण-शरण में अर्पण करता हूँ।'

चाह गई चिन्ता गई, मनुवा बेपरवाह।
जिन्हें कछू न चाहिए, सो शाहनपति शाह।।

वीर का मार्ग

मोक्ष के साधक शूरवीर होते हैं, वे राग की प्रीति में नहीं रुकते। भगवान तीर्थंकर देव का उपदेश—जो कि निर्बाधरूप से शुद्धात्मा की प्राप्ति कराने वाला है, उस उपदेश को झेलकर जो जीव चिदानन्द-स्वभाव को साधने के लिये निकला है, उसके पुरुषार्थ का वेग स्वभाव की ओर होता है। वह परभाव के सामने नहीं देखता, वह परभाव की प्रीति में नहीं अटकता।

राग का यह कण शुभ है, इससे मुझे कुछ लाभ होगा, यह कुछ सहायक होगा— इसप्रकार राग के समक्ष देखने के लिये मोक्षार्थी जीव खड़ा नहीं रहता..........वह तो निरपेक्ष होकर वीरतारूप से वीतराग-स्वभाव की श्रेणी पर चढ़ता है। तीर्थंकरों और वीर सन्तों की वाणी जीव का पुरुषार्थ जागृत करनेवाली है।

वे कहते हैं कि अरे जीव! तू वीतराग मार्ग को साधने के लिये चला है और बीच में मुड़कर राग की ओर देखने को खड़ा रहता है? तो क्या तू मोक्षमार्ग साध सकेगा? अरे कायर! क्या वीतराग मार्ग की साधना इसी तरह होती है? तू वीतराग मार्ग को साधने चला है और अभी तुझे राग की प्रीति है। क्या शुभराग भला है — हितकर है? — छोड़ दे यह राग की रुचि और राग का अवलम्बन, छोड़ दे उसका प्रेम; और वीर होकर उपयोग को झुका अपने स्वभाव की ओर! वीतराग-मार्ग का साधक शूरवीर होता है, वह ऐसा कायर नहीं होता कि क्षणिक राग की वृत्ति के कारण अपना वीतरागी मार्ग भूल कर राग के मार्ग पर चला जाये। वीर का मार्ग है शूरों का.....कायर का नहिं काम रे......।

इस बात को विशेष रूप से समझाने के लिये यहाँ एक राजपूत का दृष्टान्त दिया है—

एक राजपूत अपना विवाह करके लौट ही रहा था कि उसके राज्य पर शत्रु ने चढ़ाई कर दी। युद्ध की नौबत बज उठी, वीरों की गर्जना होने लगी, राजपूत को लड़ाई में जाना था......राजपूत की माता ने हँसकर तिलक करके अपने पुत्र को विदा किया....बहादुर राजपुतानी ने भी साहसपूर्वक पति को तलवार देकर विदा किया....;

किन्तु राजपूत युद्ध में जाते हुए नवविवाहिता अपनी पत्नि के मुख को स्नेह के कारण बारम्बार पीछे मुड़कर देखने लगा.... उसके पांव आगे नहीं बढ़ रहे थे.....युद्ध के ठीक समय पर उसके इस चित्त को दो स्थानों पर बांट देने वाली इस अन्तरंग वृत्ति को देखकर वीर राजपुतानी से न रहा गया। उसने गरज कर कहा– ठहर जाओ, मेरा यह चेहरा भी अपने साथ लेते जाओ, ताकि तुम्हारा मन युद्ध में लग सके...., इतना कहकर उसने अपना सिर काटकर राजपूत के सामने रख दिया। राजपूत अचम्भे में पड़ गया।

उसकी माता कहने लगी– अरे कायर! तूने राजपुतानी का दूध पिया है.... युद्ध में जाते समय, वीरता दिखाने के समय तू पत्नी का मुंह देखने के लिये रुक रहा है? छोड़ इस वृत्ति को! क्या यह राग की वृत्ति में रुकने का अवसर है? अरे, यह तो शूरवीर बनकर शत्रु को जीतने का समय है, अब राग की वृत्ति में नहीं रुका जाता।

इसी प्रकार जो जीव चैतन्य को साधने के लिये निकला हो और वह कहे कि राग से कुछ तो लाभ होगा, राग के अवलम्बन से कभी तो किंचित् लाभ हो सकता है –इसप्रकार राग की वृत्ति में रुककर तो तू शुभराग के सन्मुख देख रहा है, कायर होकर उसी में अटक रहा है और अंतर में चैतन्य की ओर नहीं झुकता –ऐसे कायर जीवों से जिनवाणी माता कहती है कि– अरे जीव! तू शूरवीर होकर चैतन्य को साधने के लिये निकला है, तू वीरमार्ग में मोह को जीतने के लिये चला है, तो राग की रुचि तुझे नहीं रह सकती। राग की ओर देखकर रुकने का यह समय नहीं है, यह तो राग की रुचि तोड़कर शूरवीरता से मोह-शत्रु को मारने तथा चैतन्य को साधने का अवसर है। वीरमार्ग के साधक शूरवीर ही होते हैं, वे ऐसे कायर नहीं होते कि राग की वृत्ति में अटक जायें। वीर का मार्ग शूरवीर का मार्ग है..... वह राग का बन्धन तोड़कर शूरवीरता से मोह-शत्रु को मारता है और चैतन्य को साधता है।

इसी बात को बतानेवाली चित्रकथा पृष्ठ २९ पर पढ़िए।

वीर का मार्ग

एक चित्रकथा

जो वीरमार्ग को साधने के लिये निकला है, वह राग की ओर देखने के लिये नहीं रुकता......।

अभी राजकुमार विवाह करके लौटा ही था कि युद्ध की नौबत बज उठी...माता ने तिलक करके विदा किया, राजपुतानी ने भी साहसपूर्वक तलवार देकर विदा किया।

लेकिन....! राजपूत मुड़कर पत्नी की ओर देखता है।...

यहाँ इस चित्रकथा में स्त्री राग का प्रतीक है, उसकी रुचि रखकर रागोन्मुख होकर मोक्षमार्ग को साधने के लिये नहीं जाया जा सकता, राग की रुचि छेदकर ही मोक्षमार्ग की साधना होती है –ऐसे मार्ग की प्रेरणा जिनवाणी माता जागृत करती है।

राजपुतानी कहती है– इस चेहरे का मोह तुम्हें युद्ध में जाने से रोक रहा है न! लो, यह सिर भी अपने साथ लेते जाओ।

माता कहती है— अरे कायर! शूरवीरता दिखाने के इस अवसर पर तू स्त्री के राग में रुक रहा है?

यह सुनते ही वह राग के बंधन तोड़कर वीरतापूर्वक विजय करने के लिये चल पड़ा। शत्रु मैदान छोड़कर भागते हैं, राजपूत तलवार उठाकर, घोड़ा दौड़ाकर आगे बढ़ता है।

वीरमार्ग को साधने के लिये निकले हुए परमार्थ रसिक जीव भी ऐसे ही पुरुषार्थी होते हैं।

आर्यिका माताजी के साथ में

चैत्री पूर्णिमा का संध्याकाल सुनहरे किरणों से खिल उठा था। रोज ही की भाँति मैं अपने कमरे की गैलरी में खड़ी होकर सामने बने मन्दिर के तीन भव्य और विशाल शिखरों को देख रही थी, जो कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के प्रतीक हैं और जो मुझे मोक्षमार्ग की राह दर्शाते हैं। मैंने रोज ही की भाँति आँखें बन्द करके पंच-परमेष्ठी का स्मरण किया। फिर आँखें खोल दीं; किन्तु आज कोई अपूर्व दृष्य देखने में आ रहा था।

अहा! सारे शरीर में झनझनी फैल गई। मन गद्‌गद् हो उठा। खुशी के दो आँसू गालों पर लुढ़क गये। सामने ही आर्यिका माताजी अपने संघ सहित चली आ रही हैं। अहा! मेरा सौभाग्य, मोक्ष की साधक माताजी के साक्षात् दर्शन हुए। श्रद्धा से मस्तक झुक गया। दोनों हाथ जोडकर वहीं से शुद्धात्म-नमस्कार किया। फिर आकाश की ओर देखा। आकाश से मानों रत्नों की वर्षा हो रही है, बहारें फूल बरसा रही हैं और पवन मधुर-मधुर राग सुना रहा है। आज पूज्य आर्यिका माताजी के शुभागमन से छिन्दवाडा शहर पवित्र हुआ है, धन्य हुआ है। उनके चरण-कमल के स्पर्श से यहाँ की भूमि भी निर्मल हो गई है। अहा! पेड़-पौधे के पत्ते भी एक-दूसरे से मिल कर तालियाँ बजाने लगे, मन-मयूर नाच उठा। पूज्य आर्यिका माताजी की जय से आकाश गूंज उठा।

मैं शीघ्र ही माताजी की ओर चली, किन्तु जब तक मैं उनके पास पहुँची, तब तक वे ध्यान में लीन हो गईं थीं। अहा! कितनी शान्त और गम्भीर मुद्रा थी उनकी, साक्षात् वीतरागता की मूर्ति को देखकर मैं अपनी आत्मप्यास बुझाऊंगी और मोक्ष के पथ पर चलूँगी। मुझे एसी प्रबल भावना जागृत होने लगी।

धीरे-धीरे कुछ क्षणों के पश्चात वह गोधूली की बेला पर रात्रि ने अधिकार कर लिया। चन्द्रमा भी प्रसन्न हो अपनी और

अधिक दूधिया चाँदनी छिड़ककर माताजी का स्वागत करने लगा। माताजी ने मौन धारण किया। मैं भी उनके निर्मल पैरों में नतमस्तक हो अपने घर लौट आई। रात भर वही शान्त-गम्भीर व वैराग्योत्पादक छबि चलचित्र की तरह आँखों में घूमती रही।

प्रात: उनके दर्शन को सभी लोग गये। माताजी का प्रवचन हुआ और प्रश्न-उत्तर भी। एक सूर्य गगन-पथ पर अग्रसर हो जगत की वस्तुओं को प्रकाशित कर रहा था और दूसरा सूर्य अपने ज्ञानालोक से मिथ्या-अंधकार को भगाकर आत्मा में ज्ञान-ज्योति जगा रहा था। मैंने भी कहा माताजी से, ''माताजी! आपको देखकर मेरा जीवन धन्य हुआ, मुझे संसार से विरक्तता उत्पन्न हो गई है। संसार में मेरा मन नहीं लगता है। मुझे दीक्षा दीजिये। आपकी छत्रछाया में रहकर मैं भी अपना आत्मकल्याण करना चाहती हूँ''।

माताजी ने अत्यन्त सरल मुद्रा में कहा– ''बहन, इस समय तुम्हारा दीक्षा लेना योग्य नहीं है। तुम भावावेश में आकर ऐसा कह रही हो।''

नहीं माताजी, मैं भावावेश में बहकर ऐसा नहीं कह रही हूँ—मैंने कहा।

माताजी कहने लगीं— हे भव्य आत्मा! सुनो, केवल बाह्य दीक्षा लेने से ही आत्मा का कल्याण नहीं होता। अगर ऐसी दीक्षा लेने से ही मोक्ष होता, तो ऐसी दीक्षा तो तुमने अनन्तों बार ली है और स्वर्गादि पद प्राप्त किया है। फिर भी अभीतक मोक्ष क्यों नहीं हुआ? इसका कारण है कि मोक्षमार्ग की सीढ़ी पर गलत तरीके से नहीं चढ़ा जाता। मोक्षमार्ग की प्रथम सीढ़ी सम्यग्दर्शन है। सम्यक्त्व के बिना जीव चारों गतियों में भटकता रहता है। अगर वह सीधे तरीके से प्रथम सम्यक्दर्शन और ज्ञान फिर चारित्ररूपी सीढ़ी पर चढ़े तो अवश्य ही मोक्ष में पहुँच जाय। अत: तुम भी सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करो। जैनधर्म का प्रारम्भ सम्यग्दर्शन से ही होता है।

'लेकिन माताजी, मैंने तो आजतक ऐसा सुना है कि व्रत, तप, दान, पूजा आदि प्रशस्त राग करो, वे ही मोक्ष के कारण हैं। इससे हमें आगे उत्तम कुल मिलेगा सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का निमित्त मिलेगा, और फिर हम मोक्ष प्राप्त कर सकते है।' —मैंने कहा।

"अहो! मात्र प्रशस्त राग का उपदेश देकर और उसको मोक्ष का साधन दिखाकर वे बहुत बड़ी भूल करते हैं, क्योंकि ऐसा प्रशस्त राग तो हमने अनन्तबार किया है, और स्वर्गादि पद भी प्राप्त किया है। पूर्व में भी ऐसा प्रशस्त राग किया था, जिसके कारण आज तुम्हें पांचों इन्द्रियाँ व मन मिला, मनुष्य पर्याय मिली, उत्तम जैन कुल मिला, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का निमित्त भी मिल गया। सभी कुछ तो मिल गया है। शुभराग की भूमिका पर तो तुम पहुंचे हुए ही हो और पहले भी कई बार पहुँच चुके हो।

अब इसके आगे क्या करना है, सो समझो। अगर अभी भी शुभराग को ही मोक्षमार्ग मानकर, इसे अच्छा समझकर, इसी

में अटक जाओगे तो मिथ्यात्व का सेवन करके संसार में ही भटकते रहोगे, क्योंकि प्रशस्त राग भी तो कषाय है न! कषाय आत्मा का विकार है। अगर आत्मा कषाय से भिन्न अपने ज्ञानस्वभाव को भूलकर इसी राग में रस लेने लगेगा तो उसके भीतर का अपूर्व अध्यात्मतत्त्व छिपा ही रह जायगा। तब फिर उसे मोक्ष कैसे मिल सकेगा?

पहले हम कह चुके हैं कि सम्यग्दर्शन मोक्ष का बीज है और इस बीज की प्राप्ति किसी भी प्रकार के राग से कभी होती नहीं। मोक्षमार्ग और राग दोनों बिल्कुल विपरीत हैं। हाँ, जो कुदेव आदि को पूजते हैं, भक्ष्य-अभक्ष्य का कुछ भी विचार नहीं करते हैं, पाप से धर्म मानते हैं इत्यादि। ऐसे जीव को प्रशस्त राग का उपदेश देकर और सत्यमार्ग दिखाकर पाप कार्य से छुड़ाना चाहिए। अशुभ की अपेक्षा शुभ अच्छा है लेकिन शुद्ध की अपेक्षा दोनों ही हेय हैं। आग चाहे चंदन की लकड़ी की हो या नीम की लकड़ी की, वह तो जलाने का ही काम करती है, इसी प्रकार शुभ और अशुभ दोनों प्रकार का राग तो त्याज्य ही है। सर्व राग रहित चैतन्यभाव है उस में ही शान्ति व सुख है।''

मैंने कहा– हाँ, माताजी आप बिल्कुल सही कहती हो। अत: आप ही बताइये कि मुझे अब क्या करना चहिए?

पहले तुम्हें तत्त्व का सत्य निर्णय करना चाहिए, क्योंकि सर्वप्रथम वस्तुस्वरूप की यथार्थ पहिचान करके सम्यग्दर्शन प्राप्त करना है –माताजी ने कहा।

धन्य हो माताजी, भाग्योदय से आज आपका दर्शन हुआ और सच्चा आत्महित का उपदेश प्राप्त हुआ। आपने सूखे हुए खेत को अमृत-जल से सींचकर हरा-भरा कर दिया है। माताजी, सम्यक्त्व के लिये आप के साथ ही रहकर वैराग्यपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करूँगी, और आपकी सेवा करके कृतकृत्य होऊँगी। तथा आपके

सत्समागम से मैं जरूर भेदज्ञान की कला सीखूँगी —मैंने कहा।

माताजी के आहार का समय हो गया था। बहुत उमंग और उत्साह से मैंने पड़गाहा और आहार दिया। मेरे ये हाथ भी आहार देकर पवित्र हुए। हृदय सुख-सागर में डुबकियाँ लगाने लगा। अब तो चित्त संसार के विषय-भोग से हटकर मात्र चैतन्य की ओर झुक रहा था।

जब माताजी का विहार हुआ तब स्वतः ही मेरे पैर घर को छोड़कर माताजी के साथ-साथ चलने लगे। और कुछ ही समय में मन्दिर के शिखर भी दृष्टि से ओझल हो गये। एक स्थान से दूसरे स्थान और दूसरे से तीसरे स्थान पर चलते रहते। चलते समय ऐसा लगता जैसे मैं भी भव-समुद्र से पार होने के लिये सत्समागमरूपी नौका पर बैठ कर तिर रही हूँ। जब भी चर्चा होती है तब अपने ज्ञायकस्वभावी आत्मा की, चैतन्य की, वीतरागता की, वस्तु-स्वरूप आदि की अत्यन्त ही मीठी मधुर व रसीली चर्चा होती है।

अहा! जब चैतन्य की चर्चा में ही इतना आनन्द आता है, तब उसकी अनुभूति होने पर और उसे प्राप्त करने पर कितना आनन्द आयेगा, उसकी कल्पना से भी मन भर जाता है। इस आर्यिका संघ में मुझे जो सुख का आभास होता है उसे किसी कीमत पर छोड़ने को जी नहीं चाहता। जब माताजी अपने संघ के साथ में चलती हैं तब ऐसा दिखाई देता है कि कई टिमटिमाते तारों के मध्य में चन्द्रमा सुशोभित होता हुआ अपने लक्ष्यबिन्दु पर चला जा रहा है। जब आत्मा की चर्चा होती है तब मुझे रोमांच हो आता है। हृदय में आनन्द की तंरग चलने लगती हैं।

वैराग्यपूर्वक माताजी के साथ रहते हुए मुझे किसी भी प्रकार की सांसारिक बात की चिन्ता या दुःख नहीं सताता है। कौन कहाँ है, किसका क्या हो रहा है, सब लोग मेरे प्रति कैसे भाव रखते हैं आदि किसी भी बात का यहाँ तो विकल्प ही नहीं है। हाँ कभी-

कभी न जाने कहाँ खो जाती हूँ वैराग्य भावना के चिंतन में और माताजी की वैय्यावृत्ति करने गें ! माताजी की सेवा करना मुझे बड़ा भला लगता है। और ऐसा यह महा-सौभाग्य से प्राप्त हुआ सुनहरा अवसर कितना सुन्दर है, कितना सुखकर है, कितना मधुर है, कितना मीठा है, कितना रसीला है। अहा......

माताजी का संयमित जीवन देखकर मुझे भी संयम धारण करने की हलचल मचा करती और कई बार तो मैं उनके समीप ध्यान में एकाग्रता लाने का अभ्यास करती। आरम्भ में कभी डांस-मच्छर काटते थे तो मेरा उपयोग टूट जाता था। और तब मुझे ख्याल आता कि जब मुनियों ने बड़े से बड़े उपसर्गों पर विजय प्राप्त की है तो क्या मैं इन मच्छरों के आगे हार मानूँ? नहीं... और फिर ध्यान में एकाग्रता लाने का प्रयास करती। माताजी के साथ-साथ चलने पर मैं भी जीव-रक्षा का ख्याल रखा करती। और कभी–कभी शक्ति अनुसार एकासन या उपवास भी करती। हालांकि इन सब बातों की मुझे कोई प्रतिज्ञा नहीं है, किन्तु अभ्यासरूप में बहुत सी क्रियाएं माताजी के सदृश करती हूँ। इतना सब होने पर भी मन में मात्र एक यही भावना प्रबल हो उठती है कि कब मुझे सम्यग्दर्शन हो और कब संसार बन्धन से छूटूं। माताजी भी जानती हैं मेरे हृदय की भावना! और इसलिये निरन्तर स्वच्छ और निर्मल अमृत जल की बूँदों को उछालती रहती हैं और कभी-कभी तो चैतन्यरस का फब्बारा भी छोड़ देती हैं, जिसमें मैं अच्छी तरह स्नान करके अपनी आत्मा को स्वच्छ करती रहती हूँ। कैसी-कैसी बूँदे उछलती हैं, देखिये............

आत्मा ज्ञानमूर्ति है। ज्ञान-आनन्द ही उसका स्वभाव है। आत्मा में अभेद हो वही सच्चा ज्ञान है।

राग और ज्ञान भिन्न भिन्न है। स्व और पर को भिन्न जानकर स्व का आश्रय करना, वह भेदविज्ञान का सार है। भेदविज्ञान से ही मुक्ति होती है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र आतमा के स्वाश्रय से ही मुक्ति

होना कहते हैं। पर का ग्रहण-त्याग किसी के नहीं है। सत्यस्वरूप को समझना ही वीतरागता का कारण है।

और मैं भी माताजी से प्रश्न करती रहती हूँ। कैसे प्रश्न?–"माताजी! सम्यक्त्व होने पर ज्ञानी को कैसा आनन्द आता है? तब वे कहती–अहाहा! उस आनन्द का तो क्या कहना! ऐसा अपूर्व और अतीन्द्रि आनन्द आता है कि न तो उसे वचनों से प्रगट कर सकते हैं और ना शब्दों से अंकित कर सकते हैं। उस आनन्द को तो वही जान सकता है, जिसने उसका अनुभव किया, ऐसे धर्मात्मा का चित्त अन्यत्र कहीं भी नहीं लगता है। बार-बार आत्मा की ही ओर झुकता है।

"माताजी! सत्यधर्म के श्रवण के पश्चात् भी मुझे अभी तक सम्यक्त्व क्यों नहीं होता?"

"बहन! सत्यधर्म के मात्र श्रवण से ही सम्यक्त्व नहीं होता। श्रवण आदि के पश्चात् आगे बढ़ने के लिये ग्रहण, धारणा और निर्णय करके आत्मा के चिंतन का अभ्यास करना चाहिए और स्वानुभव प्रगट करके मोक्ष का दरबाजा खोल देना चाहिए। जीव का मात्र यही महान कर्तव्य है।"

इसप्रकार माताजी के साथ प्रसन्नचित्त से स्वानुभव की चर्चा करना मुझे अत्यन्त प्रिय लगता है, अब मेरा ज़ीवन निरन्तर तत्त्व की चर्चा में मग्न हो, शान्तिपूर्वक व्यतीत हो रहा है। माताजी की ध्यानस्थ शान्त मुद्रा और सामायिक की अवस्था से मुझे बहुत प्रेरणा मिलती रहती है। चैतन्य तत्त्व की कोई अद्‌भुत महिमा दिखती है।

इसप्रकार आर्यिका माताजी के साथ चलते-चलते मैंने अनेक तीर्थों की यात्रा भी की। माताजी तीर्थस्थानों में बार-बार मुझे आत्महित की विशेष प्रेरणा देती हुई मेरा उल्लास बढ़ाती थीं और स्वानुभूति का मार्ग दिखाती थीं। माताजी के साथ-साथ रहने पर मेरे ज्ञान में भी बहुत कुछ निर्मलता होने लगी। माताजी की वैराग्य उत्पन्न करने

वाली शान्तमुद्रा को देखकर ही मुझे वैराग्य हुआ था और उन्हीं के सत्समागम से तत्त्व निर्णय करने का पुरुषार्थ प्रबल हो उठा। इसके पश्चात् एक विशेष घटना घटी।

एक दिन मुझे शुद्धात्मा का ध्यान करते-करते रोमांच हो आया। आत्मा के प्रदेश-प्रदेश में आनन्द की झंकार बज उठी। अन्तस्तल में सुख का सागर लहरा गया। कोई ऐसी अपूर्व अनुभूति हुई कि जिसकी शान्ति का वेदन वाणी में नहीं आ सकता। आत्मा का जीवन ही पलट गया।

अहा! मोक्षसाधिका माताजी के प्रताप से मेरा भी मोक्ष का द्वार खुल गया, मेरी आत्मा धन्य हो गई। बस, तभी से मैं आर्यिका माताजी के साथ में ही रहती हूँ और आर्यिका बनने की भावना भा रही हूँ। —धन्य माताजी! पूर्ण रसगुल्ला तो प्राप्त नहीं हुआ, किन्तु उसके एक अंश का स्वाद चख ही लिया। अहा! मोक्ष का द्वार खुल गया। अब तो शीघ्र ही उसमें प्रवेश कर मैं अनन्तसुख को प्राप्त करूँगी।

स्वास स्वास में सुमिरन करले, करले आतमज्ञान रे।
न जाने किस स्वास में बाबा, मिल जाये भगवान रे।।टेक।।
अनादिकाल से भूला चेतन, निज स्वरूप का ज्ञान रे।
जीव देह को एक गिने बस, इससे तू हैरान रे।।
शुभ को शुद्ध मानकर प्राणी, भ्रमत चर्तुगति माहिं रे।।१।।
कभी नरक में हुआ नारकी, कभी स्वर्ग में देव रे।
कभी गया तिर्यंच गति में, कभी मनुज पर्याय रे।।
चौरासी में स्वांग धरे पर, किया न भेद-विज्ञान रे।।२।।
भारी भूल भई अब सोचो, सतगुरु रहे जगाय रे।
यह अवसर यदि चूक गया तो, बार-बार पछताय रे।।
सत को समझो समकित धरलो, होओ जग से पार रे।।३।।

बाहर नारकिकृत दु:ख भोगे, अंदर सुख गटागटी

१. हे जीव ! देहादि से भिन्न अपने शुद्धात्मा को जान ! ऐसा बारम्बार उपदेश देने पर भी जीव ने उसे ध्यान में नहीं लिया और तीव्र पापों में रचा-पचा रहा, इसलिये मर की कहां ....गया? नरक में।

२. नरक में वह जीव पाप के फल में अनेक प्रकार के असहनीय दु:खों को भोगता था। वहां उसे पकड़कर जबरजस्ती तांबे के धधकते बोरों में भरकर....

३. और फिर बोरे के मुख को बांधकर लोहे के बड़े-बड़े घनों से पीटने लगे और चारों तरफ से तीक्ष्ण भालों से उसे छेदने लगे, उस समय अन्दर रहे हुए आत्मा को क्या होता होगा?

४. बोरे सहित सिकते हुए उस जीव को विचार आया, अरे! ऐसे दु:ख! और ऐसी वेदना! अरे रे! पूर्वभव में श्री मुनिराजों ने मुझे

शुद्धात्मा की बात सुनाई थी, परंतु मैंने उस समय यह बात कुछ भी लक्ष्य में नहीं ली, यदि मैं उस समय आत्महित कर लेता तो आज ये दुःख न होते....... ऐसे विचारों से परिणामों में विशुद्धता होने लगी.....'इस दुःख से भिन्न मेरा कोई तत्त्व अन्दर में है, मुझे मुनिराजों ने वह सुनाया था' और
दूसरे ही क्षण............

५. बोरे में बंद उस जीव को अपने शुद्ध चैतन्यतत्त्व की दृष्टि हो गई.. उन दुःखों में ही ऐसा कोई अपूर्व स्वसंवेदन प्रगट हो गया.....घनों से पिटते हुए, भालों से छिदते हुए और अग्नि से सिकते हुए भी अतीन्द्रिय सुख का वेदन कर लिया! 'बाहर नारककृत दुःख भोगे, अन्दर सुखरस गटागटी।'

नरक के ऐसे प्रतिकूल संयोगों में रहते हुए भी इस जीव ने सम्यग्दर्शन पा लिया और निजघर में परमानन्द का अनुभव कर लिया,.....तो हे जीव ! तू.......!!.

भयभीत है यदि चतुर्गति से त्याग दे परभाव को।
परमात्मा का ध्यान कर तो परमसुख को प्राप्त हो।।

चिन्मूरत दृगधारी की, मोहि रीति लगत है अटापटी।टेक।।
बाहर नारकिकृत दुःख भोगे, अन्तर सुखरस गटागटी।
रमत अनेक सुरनि संग पै तिस, परनति तैं नित हटाहटी।।१।।
ज्ञान विराग शक्ति तैं विधिफल, भोगत पै विधि घटाघटी।
सदन निवासी तदपि उदासी, तातैं आस्रव छटाछटी।।२।।
जे भवहेतु अबुध के ते तस, करत बंध की झटाझटी।
नारक पशु तिर्यंच विकलत्रय, प्रकृतिन की ह्वै कटाकटी।।३।।
संयम धर न सकै पै संयम, धारण की उर चटाचटी।
तासु सुयश गुण को 'दौलत' के, लगी रहे नित रटारटी।।४।।

— कविवर पण्डित दौलतराम

निर्विवाद तथ्य बना विवाद का विषय

निमित्तोपादान अदालत में

पात्र-परिचय

१. न्यायाधीश
२. निमित्त कुमार
३. उपादान कुमार
४. निमित्त वकील
५. उपादान वकील
६. कल्लू कुम्हार
७. संतरी
८. बाबू
९. पण्डित उपचारमल
१०. पण्डित व्यवहारचन्द

अन्य पाँच उपादान के प्रतिनिधि गवाह—

११. पण्डित अमितकुमार शास्त्री
१२. पण्डित प्रदीपकुमार शास्त्री
१३. पण्डित मनीषकुमार शास्त्री
१४. पण्डित सुशीलकुमार शास्त्री
१५. पण्डित अनुभवप्रकाश शास्त्री

(*नेपथ्य से*– प्रात:काल का समय है, ९.३० बजे हुए हैं। गुलाबी नगरी जयपुर के पार्श्वनाथ चैत्यालय में बाहर से पधारे विद्वान का प्रवचन समाप्त होने के पश्चात् दो मित्र मन्दिर से निकलते हुये कुछ चर्चा कर रहे हैं।)

प्रथम दृश्य

निमित्त कुमार– वाह भाई! उपादान कुमार वाह!! आज पण्डितजी ने प्रवचन में क्या बात कही, गुरु के बिना ज्ञान नहीं होता। यदि हमें कोई अच्छा गुरु मिल जाये तो हमारा भी कल्याण हो जाये।

उपादान कुमार– नहीं भाई निमित्त कुमार! नहीं, गुरु तो निमित्त मात्र है, कार्य तो उपादान से ही होता है, निमित्त से नहीं। वास्तव में कार्य की उत्पत्ति में अनुकूल होने से निमित्त पर कर्तापने का आरोप तो अवश्य आता है, पर उपादान के बिना निमित्त को निमित्त

भी नहीं कहा जा सकता। गुरु तो अनन्तबार मिले, अपना उपादान नहीं सुधरा, इसलिए हम अभी तक अज्ञानी हैं। छहढाला में तो पण्डित दौलतरामजी ने यहाँ तक कहा है–

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।
पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो।।

इसीलिए कहा है...........।

निमित्त कुमार– **(गुस्से से)** अरे उपादान कुमार! तू सोनगढ़ियों के पन्द्रह दिन के शिविर में क्या गया, तेरे तो सिद्धान्त ही बदल गये; तू तो मुझे कानजीस्वामी का चेला लगता है। उसने तो धर्म की परिभाषा ही बदल दी है, उसके यहाँ तो बिना पैट्रोल के ही गाड़ी चलती है। ऐसी बातें तो मंदबुद्धि ही करते हैं। उसने तो भोले-भाले लोगों को पथभ्रष्ट कर दिया है, सारे सिद्धान्त ही बदल दिये हैं। मैं तेरे और तेरे गुरु के खिलाफ स्याद्वाद हाईकोर्ट जयपुर में सिद्धान्त हानि का मुकद्दमा दायर करूँगा।

उपादान कुमार– ठीक है, जैसी तुम्हारी इच्छा। कानजीस्वामी ने तो हमें हमारे आचार्यों की ही बातें समझायी हैं। यदि तुम चाहते हो तो फैसला कोर्ट में ही हो जाये।

निमित्त कुमार– **(चलते हुए गुस्से में)** ठीक है, देख लूँगा तुम्हें। अब अपनी मुलाकात कोर्ट में ही होगी।

(दोनों गुस्से में विपरीत दिशा में जाते हैं।)

दूसरा दृश्य

(नेपथ्य से - तो आइये, आपको ले चलते हैं स्याद्वाद हाईकोर्ट, जयपुर में, जहाँ ऐसे ही कई विवादग्रस्त विषयों का निष्पक्ष

निर्णय हुआ है। अरे! यहाँ तो निमित्त कुमार अपने वकील के साथ पहले से ही तैयार बैठे हैं। उपादान कुमार भी तैयार हैं और लगता है अदालत में जज महोदय भी आने वाले हैं। अरे रे...वे तो आ भी गये। देखते हैं आज की बहस)

(अदालत का दृश्य, न्यायाधीश महोदय अदालत में आते हैं और उनके सम्मान में सभी लोग खड़े हो जाते हैं।)

ायाधीश– अदालत की कार्यवाही प्रारम्भ की जाये।

निमित्त वकील– सम्माननीय जज साहब! मैं निमित्त कुमार की ओर से आज के मुकद्दमें की पैरवी करूँगा। आज से लगभग ६० वर्ष पहले की बात है, जब दिगम्बर जैन समाज में कानजीस्वामी नामक व्यक्ति का आगमन नहीं हुआ था, तब सारी समाज और सभी विद्वानों में निमित्त का ही बोलबाला था। निमित्त कार्य का कर्ता नहीं है, ये तो किसी ने कल्पना भी नहीं की थी। बालक से वृद्ध तक, मूर्ख से पण्डित तक सभी निमित्त का ही गुणगान करते थे; लेकिन जब से कानजीस्वामी नामक व्यक्ति इस समाज में आया है, तब से सारी हवा ही बदल गयी है। जो व्यक्ति पहले निमित्त के गीत गाते थे, वे ही आज उपादान के गीत गाने लगे हैं। और तो और जज साहब! वे तो निमित्त को कार्य के प्रति अकिंचित्कर ठहराने में लगे हैं। जजसाहब! यदि यही हाल रहा तो निमित्त का नाम ही इस दुनिया से उठ जायेगा। यही अभियोग अभियुक्त उपादान कुमार पर लगाये गये हैं।

न्यायाधीश– उपादान कुमार! आपका कोई वकील है क्या?

उपादान वकील– जज साहब! मैं उपादान कुमार की ओर से इस

मुकद्दमें की पैरवी करूँगा, भाई निमित्त कुमार के वकील कह रहे थे कि कार्य निमित्त से ही होता है और निमित्त कार्य के प्रति अकिंचित्कर है– यह भ्रामक वातावरण कानजीस्वामी के आगमन से हुआ है, ये मेरे दोस्त का असत्य एवं तर्कहीन कथन हैं तथा लम्बे समय से चला आ रहा झूठ है। कानजीस्वामी ने तो इसे प्रतिपादित किया है, लेकिन जज साहब! यह बात तो भगवान आदिनाथ से लेकर महावीर तक और कुन्दकुन्दाचार्य से लेकर पण्डित टोडरमलजी तक सभी ने कही है। निमित्त कार्य का कर्ता नहीं होता है। कानजीस्वामी ने तो हमें हमारी भाषा में समझाया है। इसलिए जज साहब! मैं अदालत से निवेदन करूँगा कि सत्य-असत्य का निर्णय ऊल-जलूल बहस के आधार पर न करके ठोस तथ्यों एवं आगम प्रमाणों के आधार पर ही किया जाये। मैं इतना ही कहना चाहता हूँ।

निमित्त वकील– आज की बहस का मुद्दा है कि कार्य निमित्त से होता है या उपादान उसका कर्ता है। मेरे मुवक्किल का कहना है कि कार्य तो उपादान से होता है, निमित्त तो अकिंचित्कर है।

ठीक है, मैं आपकी बात मानता हूँ कि निमित्त कुछ नहीं करता, लेकिन मैं आपसे पूछता हूँ कि आपने चश्मा क्यों लगा रखा है? इसलिए न क्योंकि उसमें से आपको साफ दिखाई देता है। ठीक इसी प्रकार जज साहब! निमित्त कार्य का कर्ता है। क्या मेरे काबिल दोस्त इस बात को झुठला सकते हैं?

उपादान वकील– यस मी लॉर्ड! क्या मेरे काबिल दोस्त इतना भी

नहीं जानते? ये तो कोई दूध पीता बच्चा भी बता सकता है कि चश्मे से ज्ञान नहीं होता। **(चश्मा उतारते हुये)**यदि चश्मे से ज्ञान होता है तो, इसे दीवार पर लगा दीजिये, टेबिल पर लगा दीजिये, अन्धे को लगा दीजिये; तो इनको भी दिखना चाहिये, लेकिन योर ऑनर! इन सबको दिखाई नहीं देता। इससे सिद्ध होता है कि चश्मे से ज्ञान नहीं होता, बल्कि ज्ञान से ज्ञान होता है। दैट्स ऑल मी लॉर्ड।

निमित्त वकील— ठीक है! चश्मे से ज्ञान नहीं होता, लेकिन गुरु से तो ज्ञान होता है। क्यों वकील साहब! आप अपने गुरु से वकालत पढ़ने के बाद वकील बने या पैदाइशी वकील हैं। क्यों वकील साहब, है कोई जबाव?

उपादान वकील— जज साहब सवाल का जबाव देने से पहले मैं अपने काबिल दोस्त से पूछना चाहता हूँ कि उनकी लॉ की क्लास में कौन-कौन पढ़ते थे?

निमित्त वकील— जज साहब! मेरे अजीज दोस्त इन फालतू की बातों से अदालत का कीमती वक्त जाया कर रहे हैं, इन प्रश्नों का इस मुकद्दमें से कोई ताल्लुक नहीं है।

उपादान वकील— **(चिल्लाकर)** ताल्लुक है जज साहब! ताल्लुक है। मैं अदालत से गुजारिश करूँगा कि मेरे इन सवालों का जबाव दिया जाये।

न्यायाधीश— वकील साहब के सवालों का जबाव दिया जाये।

उपादान वकील— हाँ, तो मैं पूछ रहा था कि आपकी लॉ की कक्षा में कौन-कौन पढ़ता था?

निमित्त वकील– **(याद करने का अभिनय करते हुए।)** मेरी लॉ की कक्षा में भोलू, जो आज चपरासी है, वीरु अरे वही वीरप्पन, जो आजकल चन्दन तस्कर है और लालू, जो चारा घोटाले के कारण जेल में है और भैरोंसिंह, जो आजकल राजस्थान का मुख्यमंत्री है। फिलहाल मुझे इतना ही याद है।

उपादान वकील– वकील साहब! मैं पूछता हूँ कि भोलू चपरासी क्यों रहा, वकील क्यों नहीं बना? **(निमित्तवकील की ओर इशारा करते हुए।)** आप वकील ही क्यों रहें, जज क्यों नहीं बने? और वीरप्पन डाकू क्यों बना, प्रधानमंत्री क्यों नहीं बना? क्या आपके गुरु ने पढ़ाने में कोई भेद किया था?

निमित्त वकील– नहीं, कोई भेद नहीं किया था।

उपादान वकील– तो फिर भोलू चपरासी क्यों बना, वकील क्यों नहीं?

निमित्त वकील– अपने ज्ञान के कारण।

उपादान वकील– आप जज क्यों नहीं बनें? वकील क्यों रहे?

निमित्त वकील– वो क्या है कि मेरा एल. एल. बी. का रिजल्ट ग्राफ अच्छा नहीं था।

उपादान वकील– वीरप्पन डाकू क्यों बना, प्रधानमंत्री क्यों नहीं?

निमित्त वकील– अपनी मति के कारण।

उपादान वकील– हाँ, योर आनर! मैं यही कहलवाना चाहता था कि ये सब अपनी योग्यता से इन कार्यों रूप परिणमित हुए। वकील साहब की तमाम बातें अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारने जैसी हैं। जैसा वकील साहब ने कहा कि ये अपने ज्ञान के कारण वकील बने,

गुरु के कारण नहीं। इसलिए मैं अदालत से दरख्वास्त करूँगा कि वकील साहब निमित्त के समर्थन में ठोस तथ्य ही प्रस्तुत करें। अनावश्क बेकार की बातें नहीं करें।

न्यायाधीश— अदालत का समय बर्बाद न किया जाये, ठोस तथ्य ही प्रस्तुत किये जायें।

निमित्त वकील— यस मी लॉर्ड! ठोस तथ्य के रूप में मैं आपके सामने तीर्थंकरों के जीवन से सम्बन्धित कुछ सबूत देना चाहूँगा।

बात उस समय की है, जब तीसरा काल समाप्ति की ओर था। अयोध्या में राजा ऋषभदेव का दरबार लगा हुआ था। दरबार में नीलांजना का नृत्य चल रहा था, तभी अचानक नीलांजना की मृत्यु हो जाती है और राजा ऋषभदेव को इस घटना से वैराग्य हो जाता है और वे मुनिदीक्षा धारण करके वन को चले जाते हैं।

और दूसरा तथ्य उस समय का है, जब नेमिकुमार की बारात जूनागढ़ की ओर जा रही थी रास्ते में अकस्मात निरीह पशुओं का करुण क्रन्दन सुनकर उनको वैराग्य हो जाता है और वे मुनिदीक्षा धारण करके वन में चले जाते हैं।

अब मैं अपने अजीज दोस्त से पूछता हूँ कि क्या नीलांजना की मृत्यु ऋषभदेव के वैराग्य में कारण नहीं थी? क्या निरीह पशुओं का करुण क्रन्दन नेमिकुमार के वैराग्य में कारण नहीं था? कारण था, जज साहब! कारण था; इसीलिए मैं कहता हूँ कि निमित्त ही कार्य का कर्ता होता है। क्या मेरे काबिल दोस्त इन प्रमाणों को झुठला सकते हैं?

उपादान वकील– यस माइ लॉर्ड! वकील साहब द्वारा दिये गये इन तमाम तथ्यों से भी ये सिद्ध नहीं होता कि निमित्त से ही कार्य होता है, बल्कि ये तथ्य भी उपादान की ही विजय को साबित करने वाले हैं।

यदि नीलांजना की मृत्यु से ऋषभदेव को वैराग्य हुआ, तो प्रश्न उठता है कि सभी सभासदों को वैराग्य क्यों नहीं हुआ तथा हम तो कितने ही लोगों को प्रतिदिन मरते देखते हैं, हमें वैराग्य क्यों नहीं होता? और जहाँ तक पशुओं के क्रन्दन की बात है, वह तो सभी बारातियों ने भी सुना था। वे सभी मुनि क्यों नहीं बन गये? इसका जबाव है, वकील साहब?

(निमित्त वकील रुमाल से पसीना पोछतें हैं और घबराहट के कारण चुप रह जाते हैं।)

उपादान वकील– आप देख रहे है जज साहब! इनकी चुप्पी ही इनकी पराजय का भान करा रही है।

निमित्त वकील–**(थोड़े आत्मविश्वास के साथ)** जज साहब! लगता है, मेरे काबिल दोस्त ने अभी जैन लॉ की पढ़ाई पूरी नहीं की है या फिर अन्तिम पेपर नकल से पास किया है; क्योंकि ये इतना भी नहीं जानते कि अदालत के अन्तिम निर्णय से पहले हार-जीत का फैसला नहीं होता और मैं अभी हारा नहीं हूँ। अभी तो मेरे पास और भी ऐसे पक्के सबूत और गवाह हैं, जो यह सिद्ध करके रहेंगे कि निमित्त ही कार्य का कर्ता है। उनमें से एक सबूत ये कैसेट है। मैं इसे अदालत को दिखाना चाहूँगा। **(कर्मचारियों द्वारा कैसट चलाई जाती है।)**

कल्लू कुम्हार– **(कैसेट में)** हमार नाम है कल्लू कुम्हार, हम

गोल-गोल, सुन्दर-सुन्दर घड़े बनात हैं, हमार बनाये घड़े कबहूँ रिसत नाहीं हैं, हमार एक घड़ा तुम भी ले लोना बाबूजी। एक घड़ा जाड़न् के चार महिने निकाल देत हैं। हमार घड़े की चर्चा तो संसद में भी चलत हैं, अटल जी, पिछली बार हमार घड़े का पानी पीकर ही जीते रहे। **(अचानक कल्लू कुम्हार के पुत्र लल्लू के द्वारा एक घड़ा फोड़ देने पर वह चिल्लाता है।)** अरे! लल्लू की माँ! कहाँ मर गई, हम एकदम नया बढ़िया घड़ा बनाये रहे, ई शैतान ने तोड़ दौ। इसे पकड़ जरा।

निमित्त वकील– बस!**(कर्मचारी कैसेट बंद करता है।)** देखा जज साहब! कुम्हार को घड़ा बनाते हुए, कुम्हार ने ही घड़ा बनाया है, कोई मिट्टी अपने आप ही घड़ा नहीं बन जाती और रोटियाँ भी बाई ही बनाती है, कोई गेहूँ अपने आप रोटी बनकर हमारी थाली में नहीं आ जाता। मैं कुछ आगम प्रमाणों को भी अदालत में पेश करना चाहूँगा।

न्यायाधीश– प्रमाण पेश करने की इजाजत है।

निमित्त वकील– **(जज की ओर कागज बढ़ाते हुये।)**

१. नरकों में वेदना और जातिस्मरण के कारण सम्यग्दर्शन होता है।

२. क्षायिक सम्यक्त्व केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में ही होता है।

३. गौतम गणधर को मानस्तम्भ देखकर समवशरण में प्रवेश करने से सम्यक्त्व हुआ।

४. कर्मों के उदय से जीव दु:खी है। ऐसे कई उदाहरण करणानुयोग में पग-पग पर मिलेंगे।

५. महावीर के जीव ने शेर की पर्याय में दो चारण ऋद्धिधारी मुनियों के उपदेश से सम्यक्त्व प्राप्त किया।

६. हमारे पण्डित, भैया भगवतीदासजी ने तो गजब की बात कही है कि–

देव जिनेश्वर गुरु यति, अरु जिन-आगम सार।
इह निमित्त तैं जीव सब, पावत हैं भव-पार।।

और पण्डित बनारसीदासजी ने भी कहा है–

गुरु उपदेश निमित्त बिन, उपादान बलहीन।
ज्यों नर दूजे पाँव बिन, चलवे को आधीन।।

क्या इन ठोस सबूतों को भी ठुकराया जा सकता है? इनको ठुकराना तो अनन्त तीर्थंकरों को ठुकराना होगा, क्योंकि ये सभी उनकी वाणी अर्थात् जिनवाणी में आये हुए तथ्यात्मक वाक्य हैं। क्या मेरे काबिल दोस्त के पास अब भी कुछ कहने को शेष है?

न्यायाधीश– क्या उपादान वकील अपनी सफाई में अब भी कुछ कहना चाहेंगे?

उपादान वकील– **(हँसकर)** जज साहब! मेरे काबिल दोस्त ने बड़ी मेहनत से ताश का महल खड़ा किया है, लेकिन अफसोस, यह महल मेरे कुछ तर्क-युक्तियों के झोंके से ही ढह जायेगा। इस कड़ी में मैं सबसे पहले कल्लू कुम्हार को अदालत में बुलाने की इजाजत चाहूँगा।

न्यायाधीश– इजाजत है।

बाबू– कल्लू कुम्हार, अदालत में हाजिर हों.......**(कल्लू कुम्हार अदालत में आता है और कटघरे में खड़ा**

हो जाता है और बाबू कल्लू कुम्हार के सामने जाकर जिनवाणी की शपथ दिलवाता है।)

बाबू— बोलो! मैं जो कुछ कहूँगा, सच कहूँगा, सच के सिवा कुछ नहीं कहूँगा।

कल्लू कुम्हार— **(दोहराता है)** मैं जो कुछ कहूँगा, सच कहूँगा, सच के सिवा कुछ नहीं कहूँगा।

उपादान वकील— **(कल्लू कुम्हार के पास जाकर)** तो आप घड़ा बनाते हैं।

कल्लू कुम्हार— जी साब, हम ही घड़ा बनाउत हैं।

उपादान वकील— आप न हों, तो घड़ा बन ही नहीं सकता।

कल्लू कुम्हार— जी हाँ! कतइ नहीं बन सकत।

उपादान वकील— तो यहीं पर मेरे काबिल दोस्त के लिये एक बढ़िया सा घड़ा बना दीजिये।

कल्लू कुम्हार— अरे साब! गरीब सें मजाक करत हो, बिना मिट्टी के भी कोनउ घड़ा बन सकत है। इते मिट्टी तो है नाहीं, आप कहैं तो आपई के घरै पहुँचा दूँ बनाकर।

उपादान वकील— **(वहीं से थोड़ी धूल उठाते हुये)** लो, ये लो मिट्टी, अब बना दो एक घड़ा।

कल्लू कुम्हार— **(थोड़ा हड़बड़ाकर)** अरे साब ! घड़ा तो योग्य मिट्टी से ही बनत है, कोनऊँ रेत-कंकड़ से थोड़ी ही बनत है।

उपादान वकील— **(जज की तरफ)** पॉइन्ट नोट किया जाये, योर ऑनर! मिट्टी ही घड़े रूप परिणमित होती है, बिना योग्य मिट्टी के घड़ा कभी नहीं बन सकता और कुम्हार तो निमित्त मात्र है, जो घड़े रूप स्वयं

परिणमित नहीं होता और जज साहब! बाई रोटी बनाती है, तो सभी रोटी एक समान गोल-गोल स्वादिष्ट क्यों नहीं बनती? कोई जल जाती है, कोई कच्ची रह जाती है, क्या बाई जान-बूझकर बनाती है? इसका जबाव यह है जज साहब ! कि आटे की योग्यता ही उस समय वैसी थी, अत: आटा ही रोटी में कारण है, बाई नहीं।

१. मेरे काबिल दोस्त ने कहा कि– ''नरकों में वेदना और जातिस्मरण के कारण सम्यग्दर्शन होता है।'' तो मैं पूछता हूँ कि क्या सभी नारकियों को वेदना नहीं होती? और होती है, तो सभी सम्यग्दृष्टि क्यों नहीं बन जाते?

२. दूसरा सबूत उन्होंने यह दिया कि– ''क्षायिक सम्यक्त्व, केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में ही होता है।'' तो मैं पूछता हूँ कि उनके पादमूल में रहने वाले सभी जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि क्यों नहीं हो जाते?

३. फिर उन्होंने यह कहा कि गौतम गणधर को मानस्तम्भ देखकर, समवशरण में प्रवेश करने से सम्यक्त्व हुआ; तो मंखलि गोशाल जो ६६ दिन समोशरण में रहा, फिर भी उसे सम्यक्त्व क्यों नहीं हुआ?

४. और फिर ये प्रमाण दिया कि कर्मों के कारण जीव दु:खी है; तो फिर कोई जीव कभी सुखी न हो, क्योंकि कर्मों का उदय तो अनादिकाल से चला आ रहा है। करणानुयोग में तो निमित्त की मुख्यता से कथन आते हैं।

५. जहाँ तक भगवान महावीर के जीव की बात

है, तो उन्हें मारीचि के भव में सम्यक्त्व क्यों नहीं हुआ? वहाँ तो भगवान आदिनाथ जैसा समर्थ निमित्त मिला था।

६. जहाँ तक भैया भगवतीदासजी की बात है, तो पण्डित अमितकुमारजी शास्त्री, जिन्होंने भैया भगवतीदास के निमित्तोपादान दोहों का सूक्ष्मता से अध्ययन किया है। ये श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर के विद्वान हैं। मैं अदालत से दरख्वास्त करूँगा कि उन्हें यहाँ बुलाने की इजाजत दी जाये।

न्यायाधीश— इजाजत है।

बाबू— धर्मविशारद्, पण्डित अमितकुमार शास्त्री हाजिर हों.।

(भैया भगवतीदासजी के भजन गुनगुनाते हुये पण्डित अमितजी अदालत में प्रवेश करते हैं और बाबू शपथ दिलवाता है।)

उपादान वकील— पण्डितजी! आप उपादान को कार्य का कर्ता मानते हैं या निमित्त को?

पं. अमित— **(थोड़ा हँसकर)** मैंने जहाँ तक भैया भगवतीदासजी को समझा है, उनका मन्तव्य तो यह है कि- कार्य की उत्पत्ति का कर्ता तो उपादान ही है, निमित्त नहीं और उन्होंने अपने दोहों में कहा भी है कि—

उपादान बिन निमित्त तू, कर न सके इक काज।
कहा भयो जग ना लखै, जानत है जिनराज।।

अरे! इस जीव को निमित्त तो अनन्तबार मिला है, पर उपादान में योग्यता नहीं थी, इसीलिये संसार में भटक रहा है।

यह निमित्त इस जीव को, मिल्यो अनन्तीबार।
उपादान पल्टयौ नहीं, तो भटक्यौ संसार।।

उपादान वकील— बस माइ लॉर्ड! मुझे केवल इतना ही पूछना था। मेरे अजीज दोस्त को कुछ पूछना हो, तो वे भी अपनी संतुष्टि कर लें।

निमित्त वकील— यस योर आनर! मैं इनसे कुछ पूछना चाहता हूँ।

न्यायाधीश— इजाजत है।

निमित्त वकील— तो अमितजी आपने भैया भगवतीदासजी को बहुत गहराई से पढ़ा है, लेकिन शायद आप वह दोहा छोड़ गये जिसमें भैया भगवतीदासजी ने स्वयं कहा है कि—

देव जिनेश्वर गुरु यति, अरु जिन आगम सार।
इह निमित्त तैं जीव सब, पावत है भव पार।।

पं. अमित— नहीं, वकील साहब! ऐसी कोई बात नहीं है। ये दोहा भी पढ़ने में आया है, लेकिन वहाँ तो प्रश्न के रूप में वह दोहा कहा गया है, वहाँ पण्डितजी के शिष्य ने शंका व्यक्त की थी और उसी के उत्तर में पण्डितजी ने समझाया है कि— जीव को ऐसे निमित्त तो अनन्तबार मिले, किन्तु उपादान की योग्यता न होने के कारण यह संसार में ही भटक रहा है।

उपादान वकील— शायद मेरे काबिल दोस्त की शंका निर्मूल हो चुकी होगी। ठीक है, पण्डितजी आप पधारें। योर ऑनर! मैं इसी बात की पुष्टि के लिये पण्डित प्रदीपकुमारजी शास्त्री को भी अदालत में बुलाने की इजाजत चाहूँगा, जिन्होंने बनारसीदासजी की कृतियों को बहुत गम्भीरता से पढ़ा है। ये श्री दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर के विद्वान हैं।

न्यायाधीश— इजाजत है।

बाबू— धर्मरत्न, पण्डित प्रदीपकुमार शास्त्री हाजिर हों...।

(बाबू शपथ दिलवाता है।)

उपादान वकील— आप कार्य के होने में उपादान का अधिक महत्त्व समझते हैं या निमित्त का?

पं. प्रदीप— अरे बन्धुवर! बनारसीदासजी तो कहते हैं कि— कार्य के होने में तो उपादान ही अधिक महत्त्वपूर्ण है, निमित्त वहाँ उपस्थिति अवश्य रहता है, किन्तु उसका कोई महत्त्व नहीं है, कहा भी है—

उपादान को बल जहाँ, तहाँ न निमित्त को दाव।
एक चक्र सों रथ चले, रवि कौ यही स्वभाव।।

निमित्त वकील— ऑब्जेक्शन योर ऑनर।

न्यायाधीश— ऑब्जेक्शन सस्टेन्ड।

निमित्त वकील— पण्डितजी! बनारसीदासजी ने यह भी तो कहा है कि—

गुरु उपदेश निमित्त बिन, उपादान बलहीन।
ज्यों नर दूजै पाँव बिन, चलवे को आधीन।।

कहा है, कि नहीं कहा है?

पं. प्रदीप— अरे भव्य! यही तो तुम लोग मात खा जाते हो। आधा-अधूरा अध्ययन करते हो और विपरीत अर्थ धरकर, अर्थ का अनर्थ ग्रहण करते हो और बाद में विसंवाद करते हो। उसके बाद ही तो पण्डितजी साहब कहते है कि—

उपादान निज गुण जहाँ, तहाँ निमित्त पर होय।
भेदज्ञान परिणाम विध, विरला बूझे कोय।।

उपादान वकील— जज साहब! अब यह बात स्पष्ट है कि निमित्त अकिंचित्कर है और उपादान ही कार्य का कर्ता है। अब भी कोई सबूत है आपके पास, वकील साहब!

निमित्त वकील— **(झल्लाकर)** हाँ है, लेकिन मैं पूछना चाहता हूँ कि अगर निमित्त कार्य का कर्ता नहीं है, तो गाड़ी बिना ड्राइवर और पैट्रोल के चलनी चाहिये। लगता है, मेरे काबिल दोस्त की गाड़ी बिना ड्राइवर और बिना पेट्रोल के ही चलती है।

उपादान वकील— ठीक है, यदि गाड़ी ड्राइवर ही चलाता है, तो जब तक ड्राइवर गाड़ी में बैठा हो और पैट्रोल भी भरी हो, तब तक गाड़ी चलनी चाहिये; यदि ऐसा हो गया तो आपका और हमारा क्या होगा? क्योंकि फिर तो सब चलते ही रहेंगे, कभी न रुकेंगे। बोलिये, वकील साहब! बोलिये।

निमित्त वकील— कोई बात नहीं माइ लॉर्ड। मेरे काबिल दोस्त से पूछिये ये भोजन क्यों करते हैं? इनको अपनी श्रीमतीजी के हाथ के बने हुये गरम-गरम, पतले-पतले फुलके क्यों चाहिये? इनको सुबह-शाम भरपेट भोजन क्यों चाहिये? इसलिये ना, क्योंकि इनका जीवन आहार और पानी के बिना नहीं चल सकता। यदि एक दिन भोजन न मिले तो दुर्बलता महसूस क्यों करते हैं?

उपादान वकील— योर ऑनर! मेरे काबिल दोस्त न जाने क्यों भूल जाते हैं कि जिनके पास आहार-पानी की समुचित व्यवस्था है, वे लोग भी मौत की नींद सो जाते हैं, और तो और, नरकों में तो खाने को एक कण और पीने को पानी की एक बूँद भी नहीं

मिलती, फिर भी नारकी जीवित कैसे रहते हैं? डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल ने पूजन की पंक्तियों में कहा है कि–

मैं समझ रहा था अब तक प्रभु, भोजन से जीवन चलता है।
भोजन बिन नरकों में जीवन, भरपेट मनुज क्यों मरता है।।

शायद अब मेरे काबिल दोस्त के पास कुछ कहने को न बचा होगा, दैट्स ऑल।

निमित्त वकील– नहीं माइ लॉर्ड! मेरे पास अभी ऐसे गवाह मौजूद हैं, जिनके बयान ये चीख-चीख कर कहेंगे कि निमित्त ही कार्य का कर्ता है। मैं गवाह के तौर पर सबसे पहले पण्डित उपचारमलजी को अदालत में बुलाने की इजाजत चाहूँगा।

न्यायाधीश– इजाजत है।

बाबू– श्रावकोत्तम पण्डित उपचारमल शास्त्री हाजिर हों..।

(पं. उपचारमलजी भजन गुनगुनाते हुए प्रवेश करते है।)

(बाबू शपथ दिलवाता है)

निमित्त वकील– पण्डितजी! बता दो, इन वकील साहब को कि निमित्त में कितना जोर है।

पं. उपचारमल– अरे क्या बताऊँ वकील साहब! एक घंटे से फालतू बातें सुन-सुन कर मेरा तो सर ही चकरा गया। अरे! तुम्हें इतना भी नहीं पता कि बिना देव-शास्त्र-गुरु के मोक्ष क्या, मोक्षमार्ग भी नहीं मिल सकता। अगर इनकी उपयोगिता नहीं है, तो शास्त्र में ऐसा क्यों आता है कि–

देवपूजागुरुपास्ति स्वाध्यायसंयमस्तपः।
दानञ्चेतिग्रहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने।।

यहाँ तो फालतू की बातें हो रही हैं, बेचारा निमित्त

भैया कितनी अच्छी-अच्छी बातें कह रहा है पर इन वकील साहब की तो समझ में ही नहीं आ रही है।

निमित्त वकील– **(व्यंग्य करते हुए)** क्यों वकील साहब! अब भी कुछ ख्वाहिश है।

उपादान वकील– हाँ! जज साहब मैं भी कुछ सवालात करने की इजाजत चाहता हूँ।

न्यायाधीश– इजाजत है।

उपादान वकील– हाँ तो पण्डितजी! आपकी उम्र क्या होगी?

पं. उपचारमल– अजीब सवाल है जी! पूरे ५१ वर्ष के हो गये, हम।

उपादन वकील– तो आपको देव-शास्त्र-गुरु का सानिध्य कब से प्राप्त है?

पं. उपचारमल– वकील साहब! मुझे तो मेरे पिताजी और माताजी ने बचपन से धार्मिक संस्कार दिये हैं और मैं दो साल का तब हुआ था, जब णमोकारमंत्र शुद्ध पढ़ने लगा था। मेरी उम्र तो देव-शास्त्र-गुरु के सानिध्य में ही गुजरी है।

उपादान वकील– पण्डितजी आप अभी कह रहे थे कि देव-शास्त्र-गुरु हमें मोक्षमार्ग व मोक्ष देते हैं और आप लगभग ५०वर्ष से उनके चरणों में हैं, तो फिर आपको मोक्ष में होना चाहिए था। यहाँ अदालत में आप क्या कर रहे हैं? क्यों पण्डितजी! कहीं आप सिद्धालय से तो यहाँ नहीं पधारे हैं?

(लोग आपस में कानाफूसी करते हुए हँसने लगते हैं।)

(पण्डितजी विस्मयपूर्वक सिर खुजाने लगते हैं।)

उपादान वकील– देखा जज साहब! बेचारे पण्डितजी के पास इसका कोई जवाब नहीं है।

निमित्त वकील– कोई बात नहीं पण्डितजी! आप पधारें। मैं अदालत में अपने दूसरे गवाह पण्डित व्यवहारचंदजी को बुलाने की इजाजत चाहूँगा।

न्यायाधीश– इजाजत है।

बाबू– श्रावकश्रेष्ठ पण्डित व्यवहारचंद शास्त्री हाजिर हों..।

(बाबू शपथ दिलवाता है।)

निमित्त वकील– पण्डितजी साहब! आप अदालत को बता दीजिये कि निमित्त कार्य का कर्ता है या नहीं?

पं. व्यवहारचंद– हाँ, वह कर्ता है, क्योंकि नग्न-दिगम्बरपना महाव्रत आदिक ही तो मुक्ति प्राप्त कराते हैं। भला आज तक इनके बिना कोई मुक्त हुआ है। ये सब निमित्त ही तो भव से पार ले जाते हैं। वकील साहब! आप तो व्यर्थ ही निमित्त की गरिमा को ठेस पहुँचा रहे हैं।

निमित्त वकील– पॉइन्ट नोट किया जाय, योर ऑनर! पण्डितजी की दलीलें चीख-चीख कर कह रही है कि निमित्त ही कार्य का कर्ता है। लगता है, मेरे काबिल दोस्त कुछ पूछना चाहते हैं। पूछ लीजिए, पूछ लीजिए, जो पूछना चाहें।

उपादान वकील– पण्डितजी साहब मैं निमित्त के अस्तित्व से इन्कार नहीं कर रहा हूँ, अपितु मैं तो यह कह रहा हूँ कि निमित्त कार्य का कर्ता नहीं है। और यही बात आपकी दलील पर लागू होती है। जब कोई जीव मुक्ति प्राप्त करता है, तब तो नग्नत्व और महाव्रत को निमित्त कहा जाता है, वह भी असद्भूत व्यवहारनय से और इनको बाहर में धारण करके कई जीव संसार ही में भटकते रहते हैं। क्या आप इस बात से इन्कार करते हैं?

पं. व्यवहारचंद– **(थोड़े असमंजस में)** बात तो आप ठीक कह रहे हैं।

उपादान वकील– देखा, जज साहब! पण्डितजी भी मान गये। इसलिए इस बात के निर्णय में देर नही लगनी चाहिए कि निमित्त कार्य का कर्ता नहीं है। बस मैं इतना ही पूछना चाहता था।

निमित्त वकील– **(हताश होते हुए)** अच्छा पण्डितजी, आप पधारें।

उपादान वकील– अगर अब भी कुछ गुंजाइश हो, तो मैं अदालत में गवाह के तौर पर कुछ महानुभावों को बुलाने की इजाजत चाहता हूँ।

न्यायाधीश– इजाजत है।

उपादान वकील– इस श्रृंखला में मैं सबसे पहले, श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर के विद्वान, पण्डित मनीष कुमारजी शास्त्री को, जिन्होंने पण्डित टोडरमलजी द्वारा प्ररूपित निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धी तथ्यों में विशेषज्ञता हासिल की है। उन्हें अदालत में बुलाना चाहूँगा।

न्यायाधीश– इजाजत है।

बाबू– साहित्यरत्न पण्डित मनीषकुमार शास्त्री हाजिर हों..।

(बाबू शपथ दिलवाता है।)

उपादान वकील–पण्डितजी साहब! क्या कोई वस्तु निमित्ताधीन परिणमित होती है?

पं. मनीष– नहीं भाई! पण्डितजी तो कहते हैं कि अनादि निधन वस्तुऐं भिन्न-भिन्न, अपनी-अपनी मर्यादा सहित परिणमित होती हैं, कोई किसी के आधीन नहीं है, कोई वस्तु किसी के परिणमन कराने से परिणमित नहीं होती और किसी द्रव्य का परिणमन किसी के आधीन नहीं है।

उपादान वकील—फिर जगत को निमित्त की आधीनता दिखाई क्यों देती है?

पं. मनीष— भाई! बात तो ऐसी है कि जगत की दृष्टि ही निमित्ताधीन है और निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध भी घने दिखाई देते हैं। जैसे— सूर्य के उदयकाल में चकवा-चकवी का संयोग होता है और रात्रि में वियोग हो जाता है। यह सब निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध ही तो है, लेकिन इनके बीच में कर्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं है। पण्डित टोडरमलजी का इस सम्बन्ध में यही मत है।

उपादान वकील— योर ऑनर! यह पॉइन्ट नोट किया जाये। मैं इतना ही पूछना चाहता था। पण्डितजी साहब, आप पधारें। मैं अपने दूसरे गवाह के रूप में तार्किक विद्वान पण्डित सुशीलकुमारजी शास्त्री को बुलाना चाहूँगा, जिन्होंने डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल की निमित्तोपादन कृति का गहराई से अध्ययन किया है।

न्यायाधीश— इजाजत है।

बाबू— तार्किक विद्वान पण्डित सुशीलकुमार शास्त्री हाजिर हों..।

(बाबू शपथ दिलवाता है।)

उपादान वकील— पण्डितजी! यदि निमित्त को ही कर्ता मान लिया जाये, तो क्या परेशानी है?

पं. सुशील— क्या बात करते हो वकील साहब? परेशानी अरे, महा परेशानी खड़ी हो जायेगी। निमित्त को कर्ता मानने पर एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य का कर्ता मानने का प्रसंग आयेगा और द्रव्यों की स्वतंत्र सत्ता का व्याघात ही हो जायेगा, इसलिए निमित्त को कर्ता मानना महापाप है।

उपादान वकील– जज साहब, यह पॉइन्ट नोट किया जाये। डॉ. भरिल्लजी के अनुसार तो वस्तुव्यवस्था के लोप का प्रसंग आयेगा, इसलिए निमित्त को कर्ता नही मानना चाहिये। क्या मेरे काबिल दोस्त भी कुछ पूछना चाहेंगे?

निमित्त वकील– यस माइ लॉर्ड! मैं भी कुछ सवालात करने की इजाजत चाहूँगा।

न्यायाधीश– इजाजत है।

निमित्त वकील– पण्डितजी! मैं पूछना चाहता हूँ कि उपादान को कार्य का कर्ता मा"ने पर, उपादान से प्रतिसमय अनेक कार्य उत्पन्न होने का प्रसंग नहीं आयेगा?

पं. सुशील– प्रश्न तो बहुत गहरा किया है, वकील साहब ने, लेकिन समझने के लिये गहराई में उतरना पड़ेगा। पर कुछ तथाकथित, आत्मकल्याण चाहने वाले लोग इन सिद्धान्तों की गहराई में उतरने से कतराते हैं। लेकिन भाई साहब! इन सिद्धान्तों की गहराई में उतरे बिना कल्याण सम्भव नहीं है।

बात ऐसी है, वकील साहब! उपादान के दो भेद होते हैं– एक त्रिकाली उपादान और दूसरा क्षणिक उपादान, जिसे तत्समय की योग्यता भी कहा जाता है और वही क्षणिक उपादान कार्य का नियामक कारण होता है, इसलिए उपादान को ही साधकतम या कर्ता मानने पर प्रतिसमय अनेक कार्य उत्पन्न होने का दोष नहीं।

निमित्त वकील– ठीक है, मैं इतना ही पूछना चाहता था।

उपादान वकील– पण्डितजी, आप पधारें। अब भी कोई शंका की गुंजाइश है, वकील साहब!

—

निमित्त वकील— जज साहब! मेरे काबिल दोस्त ने अब तक जितने भी गवाह पेश किये हैं, उन सबने गृहस्थ पण्डितों के ही प्रमाण पेश किये हैं। मैं चाहता हूँ कि कुछ आचार्यों के प्रमाण भी पेश किये जायें।

(सभी लोग आपस में कानाफूसी करने लगते हैं)

न्यायाधीश— आर्डर, आर्डर।

उपादान वकील— जज साहब! मेरे काबिल दोस्त सम्माननीय पण्डितों को अप्रामाणिक कहकर तीर्थंकरों की वाणी और आचार्यों की वाणी को ही गलत बताना चाहते हैं; जब कि ये सभी जिनवाणी का ही प्रतिपादन करने वाले हैं।

न्यायाधीश— अदालत में सम्माननीय पण्डितों की प्रामाणिकता को ठेस न पहुँचायी जाये, फिर भी उपादान वकील आचार्यों के प्रमाण भी प्रस्तुत करें।

उपादान वकील— ठीक है, जज साहब! मैं अदालत में जैनों के सर्वमान्य आचार्य उमास्वामी के ग्रन्थ से कुछ प्रमाण प्रस्तुत कर रहा हूँ। उन्होंने तत्त्वार्थसूत्र के पाँचवे अध्याय में कहा है कि 'सत् द्रव्यलक्षणम्' 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्'। मैं वकील साहब से पूछना चाहता हूँ कि इन सूत्रों का अर्थ क्या है?

निमित्त वकील— इसका सीधा-साधा अर्थ यह है कि द्रव्य का लक्षण सत् है और सत् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त होता है।

उपादान वकील— मैं पूछता हूँ, कौन-सा द्रव्य सत् नहीं है?

निमित्त वकील— प्रत्येक द्रव्य सत् है।

उपादान वकील— ऐसा कौन-सा द्रव्य है, जो ध्रौव्य रहकर उत्पाद-व्यय सहित है?

निमित्त वकील— प्रत्येक द्रव्य।

उपादान वकील— अब क्या आप यह बता सकते हैं कि निमित्त और उपादान भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं या एक ही?

निमित्त वकील— भिन्न-भिन्न।

उपादान वकील— दोनों का स्व-चतुष्टय एक ही है या अलग-अलग है?

निमित्त वकील— अलग-अलग।

उपादान वकील— दोनों पदार्थों में उत्पाद-व्यय एक ही समय में होता है या भिन्न-भिन्न समयों में?

निमित्त वकील— एक ही समय में।

उपादान वकील— पॉइन्ट नोट किया जाये, जज साहब! मेरे काबिल दोस्त ने स्वीकार किया है कि निमित्त और उपादान दोनों का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव भिन्न-भिन्न है तथा दोनों के कार्य का समय एक ही है। अत: इस बात के लिये गुंजाइश ही नहीं रहती कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ कर सकता है।

दूसरा प्रमाण आचार्य अमृतचंद्र का जैन धर्म के अनुच्छेद समयसार पर लोकप्रिय आत्मख्याति नामक टीका का देना चाहूँगा। उन्होंने गाथा नं.३ की टीका में साफ-साफ लिखा है। वे सब पदार्थ अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहने वाले अपने अनन्त धर्मों के चक्र को— समूह को चुंबन करते हैं— स्पर्श करते हैं; पर वे अनन्त द्रव्य एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते। तो जज साहब! जब वे एक-दूसरे का स्पर्श ही नहीं करते, तब वे एक-दूसरे का कार्य क्या खाक करेंगे?

तीसरे प्रमाण के रूप में मैं आचार्य समन्तभद्र को

याद करना चाहूँगा। उन्होंने आप्तमीमांसा में साफ-साफ कहा है कि प्रत्येक द्रव्य का एक-दूसरे में अत्यन्त अभाव है, इसलिए उपादान ही कार्य का सच्चा कर्ता है। क्या मेरे काबिल दोस्त अब भी कुछ कहना चाहेंगे?

निमित्त वकील– जज साहब मेरे काबिल दोस्त कहना चाहते हैं कि कार्य के समय निमित्त होता ही नहीं है।

उपादान वकील– नहीं मैंने यह कब कहा? मैं तो यह कह रहा हूँ कि निमित्त कार्य के प्रति अकिंचित्कर है। जिनागम में उद्धृत इस बात को पूज्य श्री कानजीस्वामी ने अत्यन्त सरलता पूर्वक स्पष्ट किया है। कुछ लोगों का यह भ्रम है कि पूज्य श्री कानजी स्वामी एकान्तवादी थे, उन्होंने निमित्त को ही उड़ा दिया किन्तु उन्होने निमित्त को उड़ाया नहीं, अपितु जिनागम में जिसप्रकार वस्तुव्यवस्था का निरूपण किया गया है उसे उसीप्रकार अनेकान्त का सन्तुलन रखते हुए उसके मर्म को खोला है। मैं इस बात की पुष्टि के लिये पण्डित अनुभवप्रकाश शास्त्री को बुलाना चाहूँगा, जिन्होंने आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के निमित्तोपादान प्रवचन, मूल में भूल का गहराई से अध्ययन किया है तथा टेप प्रवचन भी सुनें हैं।

जज– इजाजत है।

बाबू– अध्यात्मरसिक पण्डित अनुभवप्रकाश शास्त्री हाजिर हों..।

(पण्डित अनुभवप्रकाशजी गम्भीर मुद्रा में अदालत में प्रवेश करते है और बाबू शपथ दिलवाता है।)

उपादान वकील– पण्डितजी कार्योत्पत्ति में निमित्त और उपादान का क्या स्थान है?

पं. अनुभवप्रकाश–अरे भाई! स्वामीजी तो कहते हैं कि जानने में तो दोनों ही आते हैं, किन्तु निमित्त के कारण उपादान में कोई कार्य नहीं होता। अथवा निमित्त उपादान का कुछ कर सकता है– ऐसा भी नहीं है और भाई ये भी नहीं मानना चाहिये कि कार्य मात्र उपादान से ही होता है, निमित्त होता ही नहीं है– ऐसा मानना तो मिथ्यात्व है। लेकिन भाई दृष्टि में उपादान ही रहना चाहिये। निमित्ताधीन दृष्टि ही संसार का कारण है।

उपादान वकील– जज साहब! अदालत में स्पष्ट हो चुका है कि सत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी निमित्त को मानते हैं, लेकिन वह कार्य का कर्ता नहीं है, इसलिए कर्ता नहीं मानते। क्या मेरे काबिल दोस्त भी पण्डितजी से कुछ पूछना चाहते हैं?

निमित्त वकील– पण्डितजी, हमने तो सुना है कि स्वामीजी कार्य में निमित्त की उपस्थिति अनिवार्य नहीं मानते थे।

पं. अनुभवप्रकाश–कौन मूर्ख कहता है कि स्वामीजी निमित्त को स्वीकार नहीं करते थे। स्वामीजी तो कहते थे कि कार्य जब भी होता है, तो बाह्य में उपस्थित किसी न किसी पदार्थ पर निमित्त का आरोप आता है, लेकिन निमित्त की उपस्थिति से ही कार्य होना माने, तो मिथ्यात्व होगा।

निमित्त वकील– ठीक है, मैं इतना ही पूछना चाहता था।

उपादान वकील– ठीक है, पण्डितजी! आप जा सकते है। देखा,

जज साहब! निमित्त मुवक्किल द्वारा लगाया गया यह इल्जाम कि सत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी निमित्त को नहीं मानते, सरासर बेबुनियाद है; क्योंकि उन्होंने स्वयं इस बात की पुष्टि की है कि कार्य के समय निमित्त देखने में आता है, लेकिन कार्य नही करता। कार्य का कर्ता तो उपादान ही रहता है। यदि मेरे काबिल दोस्त अपनी सफाई में अब भी कुछ कहना चाहें, तो कहें।

जज– क्या आप अपनी सफाई में कुछ कहना चाहेंगे?

निमित्त वकील– **(निराशापूर्वक)** नो सर। दैट्स ऑल।

जज– **(कुछ लिखकर फैसला सुनाते हुये)** तमाम ठोस तथ्यों अथाह आगम प्रमाणों और प्रामाणिक गवाहों के बयानों को मद्देनजर रखते हुये अदालत इस नतीजे पर पहुँची है कि निमित्त कुमार का पक्ष कि निमित्त से कार्य होता है और श्रीकानजीस्वामी निमित्त को नहीं मानते, सरासर बेबुनियाद है और यह अदालत उपादान कुमार के पक्ष से सहमत है कि कार्य का वास्तविक कर्ता उपादान ही होता है और जिन लोगों ने श्रीकानजीस्वामी पर निमित्त के लोप का आरोप लगाया है, वह सरासर गलत है। बे-बुनियाद है।

कुछ तथाकथित स्वार्थी लोगों ने सत्य को गहराई से समझे बिना मात्र विवाद का बिन्दु बनाकर समाज में उत्तेजना पैदा की है। यह अदालत उन तमाम लोगों को चेतावनी देती है कि वे इसप्रकार से किसी ज्ञानी पुरुष के ऊपर आक्षेप न करें, अन्यथा उन्हें चार गति और चौरासी लाख योनियों की जेल में अनन्तकाल के लिये जाना पड़ेगा।

जिनागम में निमित्त को कर्ता कहने वाले कई कथन आते हैं, ये उपचार कथन मात्र हैं। इनको एकान्त से ग्रहण करने पर मिथ्यात्व का पोषण होता है, इसलिए जिनागम में प्रवेश के लिए प्रमाण और नय का अध्ययन भी करें।

यह अदालत निमित्त कुमार को हिदायत देती है कि वे 'समयसार का कर्ता-कर्म अधिकार' सत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी के 'निमित्तोपादान पर प्रवचन' डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल द्वारा लिखित 'निमित्तोपादान' पुस्तक और पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल की कृति 'पर से कुछ सम्बन्ध नहीं'– इन सबको पढ़कर अपनी भ्रमित बुद्धि को सुधारें, अन्यथा उन्हें भी अनन्त काल के लिये संसाररूपी जेल में बंदी होना पड़ेगा। आज की अदालत इसी फैसले के साथ बर्खास्त की जाती है।

(जज उठकर कोर्ट से बाहर जाते हैं। सभी लोग आपस में चर्चा करने लगते हैं। पर्दा गिरता है।)

प्रस्तुतकर्ता : ***श्री टोडरमल दिग० जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर के छात्र विद्वान्***– सोनू जैन पोरसा, अभयकुमार जैन खैरागढ़, संजय जैन बड़ामलहरा, धर्मेन्द्र सिंघई बण्डा, अविरल सिंघई विदिशा, संदीप जैन गोहद, ललित सिंघई बण्डा, अभिनव मोदी मैनपुरी आदि।

द्रव्य स्वयं ही अपनी अनन्तशक्तिरूप सम्पदा से परिपूर्ण है, इसलिये स्वयं ही छहकारकरूप होकर अपना कार्य करने के लिये समर्थ है, उसे बाह्यसामग्री कोई सहायता नहीं कर सकती। इसलिये केवलज्ञान के इच्छुक आत्मा को बाह्यसामग्री की अपेक्षा रखकर परतंत्र होना निरर्थक है।

–प्रवचनसार गाथा १६ का भावार्थ पृष्ठ २८

परद्रव्य कोई जबरन तो बिगाड़ता नहीं है, अपने भाव बिगड़ें तब वह भी बाह्यनिमित्त है। तथा इसके निमित्त बिना भी भाव बिगड़ते हैं, इसलिये नियमरूप से निमित्त भी नहीं है।

—इसप्रकार परद्रव्य का तो दोष देखना मिथ्याभाव है।

–मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृष्ठ २४४

ज्ञानबर्द्धक पहेलियाँ/प्रश्न

(निम्नलिखित पहेलियों एवं प्रश्नों के उत्तर खोजिये? इनके सही उत्तर जैनधर्म की कहानियाँ भाग-१२ में प्रकाशित किये जायेंगे।)

१.

जो सबको जानता है,
उपयोग जिसका लक्षण है,
जो इन्द्रियों से जानने में नहीं आता,
तथा वह तुम स्वयं ही हो।
बताइये वह कौन है?

२.

सत्संग में रहने से जिसके प्राप्त होने का अवसर रहता है। जिसके प्राप्त होने पर मोक्ष निश्चित हो जाता है। जिसकी प्राप्ति होने पर, हृदय में आनन्द उमड़ने लगता है। जो इसे प्राप्त करता है, वह जगत में भी धन्य कहलाता है।
बताइये वह कौन है?

३.

बन्धुओ! नीचे दिये हुए वाक्यों के आधार पर खाली स्थान भरो
आँखों से दिखाई नहीं देते।
दोनों पदार्थ सूक्ष्म हैं,
एक पदार्थ साढ़े चार अक्षर का है।
दूसरा चार अक्षर का है।
दोनों की संख्या अनन्त है।
दोनों के स्वभाव एक दूसरे से सर्वथा भिन्न-भिन्न हैं।
एक वस्तु जीव में है।
दूसरी वस्तु कर्म में है।
बताइये वे दोनों कौन हैं?

प र मा .....
प र मा .....

४.

जो आकाश में विचरण करते हैं,
परन्तु पक्षी नहीं हैं। शरीर धारी हैं,
परन्तु खाना नहीं खाते।
जिसके आँख है, परन्तु आँख से
देखता नहीं है।
बोलते हैं, परन्तु मुँह नहीं खोलते।
चलते हैं, परन्तु डग नहीं भरते।
देव हैं, परन्तु उनकी देवी नहीं है।
बताओ वे कौन हैं?

५.

जो सबसे महान हैं, परन्तु मान नहीं है। भगवान हैं, पर बोलते नहीं। आँखें नहीं हैं, पर सब जानते हैं, किसी को कुछ देते नहीं हैं, फिर भी सबको बहुत अच्छे लगते हैं। **बताओ वे कौन हैं?**

६.

जहाँ वाणी प्रगटी वीर की,
पांच अक्षर का नाम।
गौतम जहाँ गणधर हुए,
बताओ तुम वह धाम।।
राजगृही नगरी बड़ी,
श्रेणिक का जहाँ राज।
दिव्यध्वनि का तीर्थ ये,
शोभ रहा है आज।।

७.

जो रत्नत्रय के धारक हैं।
साधुओं को पढ़ाते हैं।
श्रुतज्ञान के धनी हैं।
बताओ वे कौन हैं?

८.

जो वन-जंगल में बसते हैं,
निजस्वरूप को साधते हैं,
रत्नत्रय के धारक हैं परन्तु आचार्य नहीं हैं। **बताओ वे कौन हैं ?**

९.

पाँच अक्षर की एक वस्तु है। जो जग में सबसे उत्तम है। अपने को बहुत पसन्द आती है। वह अपने भगवान का लक्षण है। वह अरिहंत और सिद्ध के ही पास है। अन्य किसी के पास नहीं है। पहले तीन अक्षर का अर्थ 'अकेला' होता है। दूसरे और पाँचवें अक्षर से 'वन' होता है। उन्हें जानने से समकित हो। बताओ! **वह वस्तु कौन है?**

१०.

ग दे र ण व ध– इन छह अक्षरों को किसी भी प्रकार पढ़कर आप अपने जैनधर्म के एक बहुत बड़े पद की खोज कीजिए?

११.

जंगल में एक मुनिराज बैठे हैं। एक राजा वहाँ आया, वंदन किया, और पूँछा, प्रभो! मोक्ष का मार्ग क्या है? मुनिराज कुछ बोले नहीं, परन्तु एक साथ तीन अंगुली बताई। उस इशारे से राजा मोक्ष का मार्ग समझ गया। बंधुओ! आपको मोक्षमार्ग समझ में आ गया? तो बताओ वह क्या है?

१२.

बहुत वर्षों पहले की बात है, भरत क्षेत्र के एक भक्त की इच्छा हुई कि १४वें गुणस्थान में विराजमान एक तीर्थंकर के भरत क्षेत्र में दर्शन करूँ, इसलिए वह गिरनार गया, परन्तु वहाँ वे तीर्थंकर भगवान नहीं मिले। सम्मेदशिखर गया, वहाँ पर भी नहीं थे। चंपापुरी तथा पावापुरी में भी नहीं थे। शंत्रुजय ऊपर भी वे भगवान नहीं थे।

अन्त में माघवदी चौदस को एक पर्वत ऊपर गया...... वहाँ उसने चोदहवें गुणस्थान में विराजमान एक तीर्थंकर भगवान को देखा, तो बताओ **वह कहाँ गया होगा और कौन से तीर्थंकर भगवान को देखा होगा?**

१३.

घातिकर्म का क्षय किया, प्रगटा ज्ञान अनंत,
देह सहित परमात्मा, कहो जी कौन भगवंत?

१४.

एक ऐसे तीर्थंकर को खोजिए? जो सीमानगर, मंदारगिरि, धरमपुर, रम्यनगर –इन चारों नगरियों में सदा काल रहता हों ।

१५.

करने वाला किसी का नहीं, देखने वाला सबका,
देह में रहते भी देह नहीं, सागर हूँ आनन्द का।
ढाई अक्षर का नाम है मेरा, अनंतगुणों का धाम है,
सभी को मैं प्यारा हूँ, जगत से निराला हूँ।
बताओ, मैं कौन हूँ?

१६.

जिनका ज्ञान महान था, जिनकी प्रसिद्धि बहुत थी, जो ज्ञान की बंशी बहुत अच्छी बजाते थे, हम सभी को भगवान कहकर बुलाते थे, जिनका साढ़े पाँच अक्षर का नाम हैं। हम सभी को बहुत अच्छे लगते हैं। बताओ वे कौन हैं?

१७.

एक अद्‌भुत विमान है, जिसके तीन पंख हैं, जो बिना पेट्रोल के उड़ता है, उसमें जो बैठता है, जैन मुनि मेरे में बैठते हैं उसे जल्दी से मोक्ष में ले जाता है।

बोलो, कौन है?

१८.

नीचे लिखे हुए जीव अभी कौन सी गति में होंगे?

(१) महावीर प्रभु,
(२) गौतमस्वामी,
(३) सीमंधर प्रभु,
(४) कुन्दकुन्द स्वामी,
(५) मरुदेवी माता,
(६) त्रिशला माता,
(७) भरत चक्रवर्ती,
(८) बाहुबली,
(९) श्रेणिक राजा,
(१०) सीता,
(११) रामचन्द्र,
(१२) हनुमान,
(१५) आप स्वयं।

१९.

ढाई हजार वर्ष हो गये, पर शासन वर्ते आज।
जो उनको पहिचानिये तो मिले मुक्ति का राज।।
करते वृद्धि धर्म की, हैं खुद धर्म स्वरूप।
इनको पहिचानो जरा हो जाओ शिवरूप।।

२०.

जगत में एक प्राणी ऐसा है कि यदि वह बंधा हो तो चारों ओर फिरता है, परन्तु यदि वह छूटा हो तो कहीं एक डग भी न जाता है। तो वह कौन हो सकता है?

२१.

नीचे अ और ब दो ग्रुप दिये गये हैं, उन्हें आपस में सही करके लिखिये?

अ	ब
(१) दीपावली पर्व,	(१) शंत्रुजय सिद्धक्षेत्र
(२) ज्ञान,	(२) समयसार का भाई
(३) सम्यग्दर्शन,	(३) महावीर प्रभु का मोक्ष
(४) सिद्ध भगवान,	(४) आत्मा का स्वभाव
(५) पाँच पाण्डव मुनि,	(५) सिंह के भव में आत्मज्ञान
(६) नियमसार,	(६) मोक्ष का मूल
(७) समवशरण,	(७) धर्मराजा का दरबार
(८) इन्द्रभूति,	(८) शरीर बिना सुन्दर वस्तु
(९) रत्नत्रय,	(९) गौतम स्वामी का नाम
(१०) महावीर भगवान।	(१०) मोक्ष में जाने का विमान

२२.

नव तत्त्वों में से नीचे लिखे पदार्थ किस तत्त्व में आते हैं?

(१) सिद्ध भगवान
(२) वीतरागी मुनिराज
(३) स्वर्ग के देव
(४) नारकी जीव
(५) जिनवाणी माता

२३.

अपने २४ तीर्थंकरों में से सबसे अधिक तीर्थंकर किस नगरी में जन्मे? सबसे अधिक तीर्थंकरों ने कहाँ से मोक्ष पाया?

२४.

नीचे लिखे दो वाक्यों में से एक सत्य वाक्य कौन-सा है?

(१) एक जीव आत्मा को पहिचान कर मुनि हुआ और बाद में क्षपकश्रेणि मांडकर स्वर्ग में गया।
(२) एक जीव ने दो घड़ी में ही आत्मा को पहिचान कर मुनि बन, क्षपकश्रेणि मांडकर, केवलज्ञान लेकर मोक्ष चला गया।

२५.

नीचे के चार वाक्यों में से दो ही सच्चे हैं, वे कौन से हैं?

(१) एक सम्यग्दृष्टि जीव मरकर ज्योतिषी देवों का इन्द्र हुआ।

(२) एक सम्यग्दृष्टि जीव मरकर पहले नरक में गया।

(३) एक सम्यग्दृष्टि जीव मरकर दूसरे नरक में गया।

(४) एक जीव ने तीर्थंकर प्रकृति बांधी, बाद में मरकर तीसरे नरक में गया।

२६.

एक राजा थे, वे ही बाद में दीक्षा लेकर मुनि बने। दोनों हाथों की अंगुलियों का जोड़ करो तो वह राजा के नाम के प्रथम दो अक्षर होते हैं और उसके अंतिम दो अक्षरों से एक बाहन का नाम बनता है। बताओ वे कौन हैं?

२७.

आपको पाँच ज्ञान के नाम तो आते ही होंगे, मति श्रुत, अवधि मनःपर्यय और केवलज्ञान। इन पाँच ज्ञानों में से एक जीव को चार ज्ञान हों और दूसरे को मात्र एक ज्ञान ही हो तो बताओ उन दोनों में बढ़ा कौन है?

२८.

चौदह सीढ़ियों की एक सीढ़ी।.....उसमें चौथी सीढी चढ़ते ही भगवान की यथार्थ पहिचान होती है और तेरहवी सीढ़ी पर पहुँचते ही हम स्वयं भगवान बन जाते हैं तो बताओ वह चौथी और तेरहवीं सीढ़ी कौन है?

२९.

अलौकिक गणित

१. सम्पूर्ण लोक के प्रदेशों में एक जीव के प्रदेशों का भाग दिया जाये तो कितना आवेगा?

२. एक जीव एक वस्तु को एक समय में जानता है तो उसे लाखों वस्तुओं को जानने में कितना समय लगेगा?

३०.

जीव देवगति में अधिक हैं या मोक्षगति में ?
जीव देवगति में अधिक हैं या नरकगति में ?
जीव देवगति में अधिक हैं या मनुष्यंगति में ?
जीव देवगति में अधिक हैं या तिर्यंचगति में ?

३१.

एक ऐसा जीव बताइये कि
जो मनुष्यगति अथवा देवगति में न हो
और जो दुखी भी न हो,
परन्तु पूर्ण सुखी हो।

३२.

२४ तीर्थंकरों में से उन
५ तीर्थंकरों के नाम लिखो?
जिनके नम्बरों का जोड़ बराबर
१०० हो।
उन पांचों तीर्थंकरों में
समानरूप से एक ऐसी विशेषता है,
जो किसी अन्यों में नहीं है।

३३.

नीचे की बारह वस्तुओं में से आप में अभी कितनी हैं? और भगवान में
कितनी हैं?

ज्ञान, राग, मोह, श्रुतज्ञान, केवलज्ञान, अनंतगुण, उत्पाद, व्यय, ध्रुव, अरूपीपना, दुःख, पूर्णसुखी।

३४.

नीचे लिखे जीव किस गुणस्थान में होंगे?

१. आत्मज्ञान सहित देवलोक में रहा हुआ जीव किस गुणस्थान में है?

२. आत्मज्ञान सहित नरक में रहा हुआ जीव किस गुणस्थान में है?

३. इस दुनियां को ईश्वर ने बनाया है– ऐसा मानने वाला जीव किस गुणस्थान में है?

४. जिन्हें मोह भी नहीं और सर्वज्ञता भी नहीं वह जीव किस गुणस्थान में है?

५. जो सर्वज्ञ हैं और उपदेश देते हैं वे जीव किस गुणस्थान में है?

३५.

नीचे के वाक्यों में एक-एक अक्षर अधूरे है, उसे पूर्ण करो–

(१) पर—- भाव में परभाव नहीं।

(२) —भाव के नाश से स्वभाव प्रगट होता है।

(३) धर्मी को धा—- की अपेक्षा धर्म प्यारा है।

(४) आत्मा —— रूपी है।

(५) मोह के नाश से मो—-प्राप्त होता है।

३६.

नीचे लिखे ९ तत्त्वों में से कौन से ४ तत्त्व आपको अच्छे लगते हैं?-

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष।

३७.

नीचे के वाक्यों में क्या भूल है उसे सुधारिये–

१. एक मनुष्य के शरीर में बहुत ज्ञान था।

२. जीव का लक्षण शरीर है।

३. सुख-दु:ख शरीर को होता है।

३८.

नीचे दो-दो मनुष्यों के नाम दिये हैं, उनका एक-दूसरे के साथ क्या सम्बन्ध है?

१. ऋषभदेव और मारीचिकुमार
२. चेलनारानी और चंदनासती।
३. त्रिशला माता और महावीर।
४. भरत और बाहुबली।
५. नेमिनाथ और श्रीकृष्ण।
६. रावण और हनुमान।
७. राजा श्रेणिक और अभयकुमार।
८. धन्यकुमार और शालिभद्र
९. महावीर और इन्द्रभूति गौतम
१०. भरत चक्रवर्ती और ऋषभदेव।

३९.

नीचे लिखीं १० वस्तुओं में से
कौन-कौन जीव में हैं? और
कौन-कौन अजीव में हैं?
ज्ञान, सुख, दुःख, राग, रोग,
शरीर, शब्द, अस्तित्वगुण, रंग, विचार।

४०.

१. शरीर को जानने वाला शरीर से भिन्न है।
२. राग को जानने वाला राग से अन्य है।
३. ज्ञान को जानने वाला ज्ञान से.......है।
इस तीसरे वाक्य पूर्ण करिये?

४१.

जगत में सर्वज्ञ भगवान अधिक हैं
या सर्वज्ञ भगवान के भक्त?

४२.

पंच परमेष्ठियों में,
पूर्णज्ञानी कितने हैं ?
अपूर्णज्ञानी कितने हैं ?
तथा वे पाचों परमेष्ठी कौन-कौन सी गति में होते हैं?

४३.

निम्न वाक्यों में से बताइये कि कौन-सा वाक्य किस शास्त्र का है?

(१) जो अरिहंत को जानता है वह आत्मा को जानता है।

(२) तीन भुवन में सार बीतराग विज्ञानता।

(३) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता ही मोक्षमार्ग है।

(४) मैं एक शुद्ध सदा अरूपी, ज्ञान-दृग हूँ यथार्थ से।

(५) 'दंसणमूलो धम्मो'-धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है।

(६) णमोजिणाणं जिदभवाणं। भव को जीतनेवाले जिनों को नमस्कार।

(८) परमात्मप्रकाशाय नित्यं सिद्धात्मने नमः

(९) णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं, णमो......

४४.

नीचे एक-एक अक्षर लिखा है, आप शेष अक्षर आगे-पीछे लिखकर २४ महापुरुषों के नाम लिखिए–

बा	ऋ	अ
प	भ	ति
शर्व	चं	अ
सु	त	श्रे
व्रत	भ	श
ने	अ	अ
वृ	ध	शां
कुं	म	वी
वि	न	पा

३२.

सम्पूर्ण लोक के सभी प्रदेशों में
जिस जीव का एक-एक प्रदेश रहता है,
उस जीव के पास उस समय पाँच ज्ञानों में से
कितने ज्ञान होंगे? और वह जीव
कितने समय में मोक्ष जायेगा?